इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय
मानविकी विद्यापीठ

MSK-005

वैदिक वाङ्मय एवं भारतीय संस्कृति और सभ्यता

खंड

3

वैदिक सूक्त

खण्ड 3 परिचय

MSK-005 'वैदिक वाङ्मय एवं भारतीय संस्कृति और सभ्यता' पाठ्यक्रम का यह तृतीय खण्ड है। इस खण्ड में आप वैदिक देवताओं से सम्बद्ध सूक्तों तथा उनके स्वरूप का अध्ययन करेंगे। इस खण्ड की दसवीं, ग्यारहवीं और बारहवीं इकाई वैदिक सूक्तों से सम्बद्ध है। इन इकाइयों में आप अग्नि, इन्द्र, सवितृ, शिवसंकल्प, वाक्, पुरुष मरुत्, अभय, नासदीय, हिरणगर्भ, विष्णु और सांमनस्य सूक्त से सम्बन्धित मन्त्रों का अध्ययन करेंगे। इस खण्ड की तेरहवीं इकाई वैदिक देवताओं के स्वरूप से सम्बन्धित है। इस इकाई में आप अग्नि, इन्द्र, वाक्, नासदीय, सवितृ, मरुत्, पुरुष और विष्णु देवता के स्वरूप एवं उनकी विशेषताओं का अध्ययन करेंगे।

इस खण्ड की प्रत्येक इकाई में इकाई से सम्बन्धित कठिन शब्दावली दी गई है जिनका अर्थ जानना आपके लिए नितान्त अपेक्षित है, इन शब्दों का अर्थ जानकर आप अपने भाषिक सामर्थ्य में वृद्धि कर सकते हैं। इकाइयों के अन्त में उपयोगी पुस्तकों की सूची दी गयी है। आप इन पुस्तकों का अध्ययन कर सम्बन्धित विषय की और अधिक जानकारी प्राप्त कर सकते हैं।

शुभकामनाओं के साथ।

इकाई 10 अग्नि (1.1), इन्द्र (2.12), सवितृ (1.35), शिवसंकल्प (34.1-6)

इकाई की रूपरेखा

10.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप –

- ऋग्वेद के प्रमुख सूक्तों का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।
- अग्नि, इन्द्र, सविता आदि के कर्म, गुण एवं स्वरूपों के वैदिक आधार से अवगत हो सकेंगे।
- विविध सूक्तों के वर्ण्य-विषय से परिचित होकर तत्सम्बद्ध माहात्म्य का वर्णन कर सकेंगे।
- प्रकृत सूक्तों के अध्ययन से वैदिक शब्दावली एवं विषयों में अवगाहन कर सकेंगे।

10.1 प्रस्तावना

वैदिक साहित्य विश्व में प्राचीनतम है। वेद के दो भाग हैं– मन्त्र एवं ब्राह्मण। मन्त्रों का संकलन संहिता ग्रन्थों में है तथा ब्राह्मण साहित्य संहिताओं के व्याख्यान ग्रन्थ हैं। इन संहिताओं में ऋग्वेद की शाकल संहिता प्राचीनतम है। इसमें दश मण्डल हैं तथा प्रत्येक के अन्तर्गत सूक्त तथा सूक्तों में मन्त्रों का संकलन है। प्रकृति से सम्बद्ध अग्नि, सूर्य, इन्द्र, वरुण, पर्जन्य, मरुत् प्रभृति विषयों को समाहित कर सूक्तों का वर्णन है। ये सूक्त प्रकृति के रहस्यों से परिपूर्ण हैं तथा उनमें मानव कल्याण तथा प्रकृति चित्रण के माध्यम से अनेक विषयों का सराहनीय वर्णन है। प्रकृति के सूक्ष्मतम चित्रण से ओत-प्रोत ये सूक्त ऐसी अनेक जानकारियाँ प्रदान करते हैं, जो हमारे राष्ट्र एवं समाज के लिये अत्यावश्यक हैं। यहाँ हम ऐसे ही कतिपय प्रमुख सूक्तों का अध्ययन करेंगे।

10.2 अग्नि (ऋग्वेद 1.1)

ऋषि – विश्वामित्र, देवता – अग्नि।
ओ३म् अग्निमीळे पुरोहितं, यज्ञस्य देवमृत्विजम्।
होतारं रत्नधातमम्।।1।।

अन्वय – (अहम्) यज्ञस्यपुरोहितं देवम् ऋत्विजं, होतारं, रत्नधातमम् अग्निम् ईले।

शब्दार्थ – अग्निम् = अग्नि देवता की, ईळे = स्तुति करता हूँ, पुरोहितम् = यज्ञादि में प्रतिपद अभीष्ट के सम्पादक, यज्ञस्य = यज्ञ के, देवम् = दानादिगुणयुक्त, ऋत्विजम् = ब्रह्मा प्रभृति में से एक, होतारम् = देवताओं का आह्वान करने वाले, रत्नधातमम् = यज्ञफलरूपी रत्न/धन प्रदान करने वाला।

अनुवाद – मैं यज्ञ के पुरोहित, दानादिगुणयुक्त अथवा देवरूप होता की भूमिका ऋत्विक् तथा यज्ञ के परिणामतः धन/रत्न प्रदान करने वालों में सर्वश्रेष्ठ अग्निदेवता की (मैं) स्तुति करता हूँ।

व्याकरण – **रत्नधातमम्** = रत्नानि अतिशयेन दधाति इति रत्नधातमः तम् रत्न+धा+क्विप्+तमप्+अम्, **पुरोहितम्** = पुरः अव्ययपूर्वक धा धातु से क्त प्रत्यय करने पर अनुबन्धलोप होने पर, दधातेर्हि सूत्र से धा इसके स्थान पर हि यह आदेश होने पर पुरोहितम् पद निष्पन्न होता है।

विशेष – अग्निर्वैदेवानां होता (ऐतरेयब्राह्मणम् 3.18) **अग्नि** देवताओं का होता है।

अग्निः पूर्वेभिर्ऋषिभिरीड्यो नूतनैरुत।
स देवाँ एह वक्षति।।2।।

अन्वय – अग्निः पूर्वेभिः ऋषिभिः उत नूतनैः (ऋषिभिः) ईड्यः। सः देवान् इह आवक्षति।

शब्दार्थ – अग्निः = अग्नि देवता, पूर्वेभिः = प्राचीन, ऋषिभिः = मन्त्रद्रष्टा ऋषियों द्वारा, ईड्यः = स्तुत्य है, नूतनैः = अर्वाचीन, उत और, सः = वह, देवान् = देवताओं को, इह = यहाँ यज्ञ में, आ वक्षति = लाये।

अनुवाद – (जो) अग्नि प्राचीन तथा अर्वाचीन ऋषियों के द्वारा स्तुत्य है, वह देवताओं को यहाँ यज्ञ में लाये।

व्याकरण – **ईड्य** = ईड् स्तुतौ धातु से ण्यत् प्रत्यय करने पर निष्पन्न। **देवाँ** = देवान्+(आ+इह) एह ऐसा होने पर **दीर्घादटि समानपदे** से न का रुत्व एवं **आतोऽटि नित्यम्** से सानुनासिक आकार (आँ)।

विशेष – गत्यर्थक ऋष् धातो से इन् प्रत्यय करने पर ऋषि शब्द निष्पन्न होता है।

अग्निना रयिमश्नवत्पोषमेव दिवेदिवे।
यशसं वीरवत्तमम्।।3।।

अन्वय – (जनः) अग्निना एव पोषं यशसं वीरवत्तमं रयिं दिवे दिवे अश्नवत्।

शब्दार्थ – अग्निना = अग्नि से/के द्वारा, रयिम् = धन, अश्नवत् = प्राप्त करे, पोषम् = पुष्टि प्रदान करने वाला, एव = ही, दिवेदिवे = प्रतिदिन, यशसम् = दानादि के द्वारा कीर्ति से युक्त, वीरवत्तमम् = अतिशय वीर पुत्रों से युक्त।

अनुवाद – यजमान अग्नि से प्रतिदिन नित्य वर्धनशील, कीर्तिदायक एवं अतिशय वीर पुत्रों से युक्त धन प्राप्त करे।

व्याकरण – **वीरवत्तमम्** = वीर शब्द से मतुप् प्रत्यय फिर तमप्, **पोषम्** = पुष् धातु घञ् प्रत्यय।

विशेष – यहाँ प्रयुक्त रयिशब्द धनवाचक है।

अग्ने यं यज्ञमध्वरं, विश्वतः परिभूरसि।
स इद्देवेषु गच्छति।।4।।

अन्वय – (हे) अग्ने यम् अध्वरं यज्ञं विश्वतः परिभूः असि, सः इत् देवेषु गच्छति।

शब्दार्थ – अग्ने = हे अग्नि, यम् = जिस, यज्ञम् = यज्ञ को, अध्वरम् = हिंसारहित, विश्वतः = सर्वतः, परिभूः = व्याप्त करने वाले, असि = हो, सः = वह, इत् = ही, देवेषु = देवताओं में, गच्छति = पहुंचता है।

अनुवाद – हे अग्नि, जिस हिंसारहित यज्ञ को (तुम) चारों तरफ से व्याप्त करने वाले (होते) हो, वही (यज्ञ) देवताओं में पहुँचता है।

व्याकरण – **परिभूः** = परि+भू+क्विप्, परितो भवति, **इत्** = ऋचा में प्रयुक्त होने पर निश्चयार्थक होता है।

विशेष – ध्वर हिंसार्थक है, जहाँ उसका प्रतिषेध है वह, **अध्वरम्।**

अग्निर्होता कविक्रतुः, सत्यश्चित्रश्रवस्तमः।
देवो देवेभिरा गमत्।।5।।

अन्वय – अग्निः होता कविक्रतुः सत्यः चित्रश्रवस्तमः।(सः) देवः देवेभिः (अस्मिन् यज्ञे) आ गमत्।

शब्दार्थ – अग्निः = अग्नि देवता, होता = देवताओं का आह्वान करने वाला, कविक्रतुः = सर्वक्रान्तप्रज्ञावाला अर्थात् जिसकी प्रज्ञा सब कुछ जानने वाली हो, सत्यः = असत्य से रहित, चित्रश्रवस्तमः = अतिशय रूप से विविध कीर्तियुक्त, देवः = हविर्ग्राहक, देवेभिः = देवताओं के साथ, आ गमत् = आये।

अनुवाद – (देवताओं का) आह्वान करने वाला, सर्वक्रान्तप्रज्ञावाला, सत्यरूप, अतिशय विविध कीर्ति-सम्पन्न तथा प्रकाशक अग्नि देवताओं के साथ (यहाँ इस यज्ञ में) आये।

व्याकरण – **देवेभिः** = देव शब्द भिस् विभक्ति तृतीया बहुवचन, बहुलं छन्दसि सूत्र से भिस् ऐसा देशाभाव।

विशेष – क्रान्त प्रज्ञा युक्त अथवा क्रान्त कर्म से युक्त, **कविक्रतुः।**

यदङ्ग दाशुषे त्वमग्ने भद्रं करिष्यसि।
तवेत्तत्सत्यमङ्गिरः।।6।।

अन्वय – (हे) अग्ने अङ्ग, यत्त्वं दाशुषे भद्रं करिष्यसि, (हे) अङ्गिरः, तत् तव इत् (इति एतत्) सत्यम्।

शब्दार्थ – यत् = जो, अङ्ग अभिमुख अर्थात् सम्मुख करने के अर्थ में प्रयुक्त निपात, दाशुषे = हवि प्रदान करने वाले यजमान के लिये, त्वम् = तुम, अग्ने = हे अग्नि, भद्रम् = कल्याण, करिष्यसि = करोगे, तव = तुम्हारा, इत् = ही, तत् = वह, सत्यम् = सत्य है, अङ्गिर = हे अङ्गिरस नाम ऋषि के कारण प्रथमतया समानीत अग्नि अथवा हे अङ्गारों में उत्पन्न होने वाले अग्नि।

अनुवाद – हे अग्नि, (हवि) प्रदान करने वाले (यजमान) के लिये उसके सम्मुख तुम जो कुछ कल्याण (प्रदान) करोगे, हे अङ्गारों में उत्पन्न होने वाले अग्नि, वह (सब) तुम्हारा ही है, यह सत्य है।

व्याकरण – दाशुषे दानार्थक दाशृ धातु से क्वसु प्रत्यय करने पर दाश्वस्, के चतुर्थी का एकवचन।

विशेष – शाट्यायन शाखा में भद्र शब्दार्थः यद्वै पुरुषस्य वित्तं तद् भद्रम्, गृहा भद्रं, प्रजा भद्रं, पशवो भद्रमिति।

उप त्वाग्ने दिवेदिवे, दोषावस्तर्धिया वयम्।
नमो भरन्त एमसि।।7।।

अन्वय – हे अग्ने, त्वा उप दिवेदिवे दोषावस्तः धिया नमो भरन्तः वयम् एमसि।

शब्दार्थ – उप = समीप, त्वा = तुम्हारे, अग्ने = हे अग्नि, दिवेदिवे = प्रतिदिन, दोषावस्तः = हे अन्धकार को प्रकाश करने वाले, धिया = बुद्धि अथवा कर्म के अनुसार, वयम् = हम, नमः = नमस्कार या स्तुति, भरन्तः = करते हुये, आ इमसि = आते हैं।

अनुवाद – हे अन्धकार को प्रकाश में परिवर्तित करने वाले अग्नि, प्रतिदिन हम (अपनी) बुद्धि के अनुसार नमस्कार करते हुये तुम्हारे पास आते हैं।

व्याकरण – भरन्तः हृञ् हरणे धातु से शतृ प्रत्यय तथा **हृग्रहोर्भश्छन्दसि** वार्तिक से ह के स्थान पर भ।

विशेष – रात्रि एवं दिवस, **दोषावस्तः।**

राजन्तमध्वराणां गोपामृतस्य दीदिविम्।
वर्धमानं स्वे दमे।।8।।

अन्वय – हे अग्ने, राजन्तम्, अध्वराणां गोपाम्, ऋतस्य दीदिविम् स्वे दमे वर्धमानम् (त्वा उपाएमसि)

शब्दार्थ – राजन्तम् = दीप्यमान, अध्वराणाम् = यज्ञों के, गोपाम् = संरक्षक, ऋतस्य = सत्य के, दीदिविम् = अत्यन्त प्रकाशमान, वर्धमानम् = बढ़ने वाले, स्वे = अपने, दमे = यज्ञशाला में।

अनुवाद – यज्ञों के संरक्षक, सत्य के पालक, अत्यन्त प्रकाशमान तथा अपने घर (यज्ञशाला) में (नित्य) बढ़ने वाले (अग्नि के पास हम प्रतिदिन आते हैं)।

व्याकरण – गोपाम् गाः पातीति गोपाः, गो+पा+क्विप्, तम्, **राजन्तम्** दीप्त्यर्थक राज् धातु शतृ प्रत्यय पुंल्लिंग द्वितीया एकवचन।

विशेश – **दम** शब्द गृह का वाचक है।

स नः पितेव सूनवेऽग्ने सूपायनो भव।
सचस्वा नः स्वस्तये।।9।।

अन्वय – (हे) अग्ने, सः (त्वम्) सूनवे पिता इव नः सूपायनः भव। नः स्वस्तये सचस्व।

शब्दार्थ – सः = पूर्वोक्त गुणयुक्त वह अग्नि, नः = हमारे लिये, पितेव = पिता के समान, सूनवे = पुत्रार्थ, अग्ने = हे अग्नि, सूपायनः = अच्छी प्रकार से अर्थात् सरलता से पहुँचने योग्य, भव = हो, सचस्व = साथ हो जाओ, नः = हमारे, स्वस्तये = कल्याण के लिये।

अनुवाद – (पूर्वोक्त गुणसम्पन्न) वह (तुम) हे अग्नि, हमारे लिये सरलता से पहुँच के योग्य हो जाओ, जिस प्रकार पिता (अपने) पुत्र के लिये होता है। (हे अग्नि) हमारे कल्याण के लिये (तुम) हमारे साथ रहो।

व्याकरण – **सूपायनः** सूप एवं उप उपपदपूर्वक अयतेर्युच् तथा युवोरनाकौ से य के स्थान पर अनादेश।

विशेष – कल्याणकारी वचन, **स्वस्ति।**

10.3 इन्द्र (ऋग्वेद 2.12)

ऋषि – गृत्समद, देवता – इन्द्र।

यो जात एव प्रथमो मनस्वान्देवो देवान् क्रतुना पर्यभूषत्।
यस्य शुष्माद्रोदसी अभ्यसेतां, नृम्णस्य मह्ना स जनास इन्द्रः।।1।।

अन्वय – यः प्रथमः मनस्वान् देवः जातः एवक्रतुना देवान् पर्यभूषत्। यस्य शुष्मात् रोदसी अभ्यसेताम्। हे जनासः, नृम्णस्य मह्ना स इन्द्रः (अस्ति)।

शब्दार्थ – यः = जो, जातः = उत्पन्न होकर, एव = ही, प्रथम = सर्वप्रथम, मनस्वान् = बुद्धिमान्, मनस्वी, देवः = देव ने, देवान् = देवताओं को, क्रतुना = पराक्रम से, पर्यभूषत् = आधिपत्य स्थापित किया, यस्य = जिसके, शुष्मात् = शारीरिक शक्ति से, रोदसी = द्युलोक तथा पृथिवी, अभ्यसेताम् = कांपते हैं, नृम्णस्य = महान् बल की, मह्ना = महिमा से, सः = वह, जनासः = हे मनुष्यों, इन्द्रः = इन्द्र है।

अनुवाद – जिस प्रधान बुद्धिमान् देव ने उत्पन्न होते ही अपने पराक्रम से सर्वप्रथम देवताओं पर पराभूय कर आधिपत्य प्राप्त किया, महान् बल के कारण जिसकी शक्ति के सामने द्युलोक तथा पृथिवी कांपते हैं, हे मनुष्यों, वह इन्द्र है।

व्याकरण – **अभ्यसेताम्** = भयार्थक भ्यस **भ्यस भयवेपनयोः** इति नैरुक्त मतानुसार।

विशेष – युग्मार्थक द्युलोक एवं भूलोक **रोदसी।**

यः पृथिवीं व्यथमानामदृंहद् यः पर्वतान्प्रकुपिताँ अरम्णात्।
यो अन्तरिक्षं विममे वरीयो यो द्यामस्तभ्नात्स जनास इन्द्रः।।2।।

अन्वय – यः व्यथमानाम् पृथिवीम् अदृंहत्, यः प्रकुपितान् पर्वतान् अरम्णात्, यः अन्तरिक्षम् वरीयः विममे, यः द्याम् अस्तभ्नात् (हे) जनासः सः इन्द्रः (अस्ति)।

शब्दार्थ – यः = जिस इन्द्र ने, पृथिवीम् = पृथिवी को, व्यथमानाम् = कांपती हुई, अदृंहत् = स्थिर किया, यः = जिसने, पर्वतान् = पर्वतों को, प्रकुपितान् = इधर-उधर उड़ने वाले, अरम्णात् = स्थापित किया, यः = जिसने, अन्तरिक्षम् = अन्तरिक्ष को, विममे = विस्तृत किया, वरीयः = अधिक चौड़ा, यः = जिसने, द्याम् = द्युलोक को, अस्तभ्नात् = स्तम्भित किया, सः = वह, जनासः = हे मनुष्यों, इन्द्रः = इन्द्र है।

अनुवाद – जिसने कांपती हुई पृथिवी को स्थिर किया, जिसने (इधर-उधर) उड़ने वाले पर्वतों को (अपने-अपने स्थान पर) स्थापित किया, जिसने अन्तरिक्ष लोक को चौड़ाई में विस्तृत किया, जिसने द्युलोक को स्तम्भित किया, हे मनुष्यों, वह इन्द्र है।

व्याकरण – **अदृंहत्** = वृद्ध्यर्थक दृह् धातु लङ् लकार, प्रथम पुरुष एकवचन।

विशेष – पर्वतों के प्राचीन काल में उड़ने और स्तम्भन का वर्णन है।

यो हत्वाहिमरिणात्सप्त सिन्धून् यो गा उदाजदपधा बलस्य।
यो अश्मनोरन्तरग्निं जजान संवृक्समत्सु स जनास इन्द्रः।।3।।

अन्वय – यः अहिम् हत्वा सप्त सिन्धून् अरिणात्, यः बलस्य अपधा गाः उदाजत्, यः अश्मनोः अन्तः अग्निम् जजान, (यः) समत्सु संवृक्, (हे) जनासः, स इन्द्रः(अस्ति)।

शब्दार्थ – यः = जिसने, हत्वा = मारकर, अहिम् = सर्पाकार मेघ को, अरिणात् = प्रवाहित किया, सप्त = सात, सिन्धून् = समुद्रों/नदियों को, यः = जिसने, गाः = गायों को, उदाजत् = निकाला, अपधा = गुफा से, बलस्य = बल नामक असुर की, यः = जिसने, अश्मनोः = मेघों के या पत्थरों के, अन्तः = बीच, अग्निम् = अग्नि को, जजान = उत्पन्न किया, संवृक् = संहार करने वाला, समत्सु = संग्रामों में, सः = वह, जनासः = हे मनुष्यों, इन्द्रः = इन्द्र है।

अनुवाद – जिसने सर्पाकार मेघों को मारकर सात समुद्रों/नदियों को प्रवाहित किया, जिसने बल की गुफा से गायों को निकाला, जिसने मेघों के बीच (विद्युत्) अग्नि को उत्पन्न किया, (जो) युद्धों में (शत्रु का) संहार करने वाला है, हे मनुष्यों, वह इन्द्र है।

व्याकरण – **अश्माः** = अश्नुते अन्तरिक्ष को व्याप्त करता है अर्थात् मेघ।

विशेष – जल से अग्नि की उत्पत्ति का विशेष सन्दर्भ है।

येनेमा विश्वा च्यवना कृतानि, यो दासं वर्णमधरं गुहाकः।
श्वघ्नीव यो जिगीवां लक्षमाद्, अर्यः पुष्टानि स जनास इन्द्रः।।4।।

अन्वय – येन इमा विश्वा च्यवना कृतानि, यः दासं वर्णम् गुहा अधरं अकः, यः श्वघ्नी इव लक्षं जिगीवान्, अर्यः पुष्टानि आदत् (हे) जनासः सः इन्द्रः (अस्ति)।

शब्दार्थ – येन = जिसके द्वारा, इमा = ये, विश्वा = सम्पूर्ण, च्यवना = नश्वर/गतिमान्, कृतानि = की गयी हैं, यः = जिसने, दासम् = दास, वर्णम् = जाति को, अधरं = नीच, गुहा = गुफाओं में, अकः = किया, श्वघ्नीव = व्याध (बहेलिया) की तरह, जिगीवान् = जीतकर, लक्षम् = शिकार को, आदत् = ग्रहण किया, अर्यः = शत्रु के, पुष्टानि = रक्षित धन को, सः = वह, जनासः = हे मनुष्यों, इन्द्रः = इन्द्र है।

अनुवाद – जिसके द्वारा ये सम्पूर्ण (पदार्थ) बनाये गये, जिसने नीच/दास जाति को गुफाओं में भेज दिया, जिसने जीतकर शत्रु के रक्षित धन को ग्रहण किया जैसे शिकारी अपने शिकार को, हे मनुष्यों, वह इन्द्र है।

व्याकरण – **अकः** = अकार्षीत् अर्थात् किया, **श्वघ्नीः** = श्वभिः कुत्तों के द्वारा जो मृगों का मारण करवाता है अर्थात् व्याध।

विशेष – इन्द्र की शत्रु विजय का विशेष वर्णन किया गया है।

यं स्मा पृच्छन्ति कुह सेति घोरम् उतेमाहुर्नैषो अस्तीत्येनम्।
सो अर्यः पुष्टीर्विज इवा मिनाति श्रदस्मै धत्त स जनास इन्द्रः।।5।।

अन्वय – यम् (जनाः) पृच्छन्ति स्मः, कुह सः इति, उत ईम् एषः न अस्ति इति एनम् आहुः। सः विजः इव अर्यः पुष्टीः आमिनाति। (हे) जनास सः इन्द्रः अस्ति। अस्मै श्रद् धत्त।

शब्दार्थ – यम् = जिसके, स्म = प्रश्न पूछने का वाचक एक निपात, पृच्छन्ति = पूछते हैं, कुह = कहाँ, सः = वह, इति = ऐसा, घोरम् = भयानक, उत = और, ईम्= उसके विषय में, आहुः = कहते है, न = नहीं, एषः = यह, अस्ति = है, इति = ऐसा, एनम् = इसको, सः = वह, अर्यः = शत्रु-सम्बन्धी, पुष्टीः = रक्षित धन, विज इव = उत्तेजित होते हुये की तरह, आ = चारों तरफ से, मिनाति = नष्ट करता है, श्रत् = श्रद्धा, अस्मै = उसके लिये, धत्त = धारण करो, सः = वह, जनासः = हे मनुष्यों, इन्द्रः = इन्द्र है।

अनुवाद – जिस भयानक इन्द्र के विषय में वह कहाँ है, ऐसा (वे) पूछते आये हैं, तथा वह नहीं है ऐसा भी वे उसी के ही विषय में कहते हैं, वह उत्तेजित होते हुये की तरह शत्रु के रक्षित धन को चारों तरफ से विनष्ट करता है, उसमें श्रद्धा/विश्वास रखो, हे मनुष्यों, वह इन्द्र है।

व्याकरण – **ईम्** = यह पादपूत्यर्थक निपात है, **मिनाति** = हिंसार्थक मीञ् में **मीनातेर्निगमे** प्रकृत पाणिनीय सूत्र से ह्रस्व।

विशेष – **अर्यः** = अरेः अर्थात् शत्रुसम्बन्धी।

यो रध्रस्य चोदिता यः कृशस्य यो ब्राह्मणो नाधमानस्य कीरेः।
युक्तग्राव्णो योऽविता सुशिप्रः सुतसोमस्य स जनास इन्द्रः।।6।।

अन्वय – यः रध्रस्य चोदिता (अस्ति), यः कृशस्य, यः ब्रह्मणः, (यः) नाधमानस्य कीरेः (चोदिता अस्ति), यः सुशिप्रः युक्तग्राव्णः सुतसोमस्य (च) अविता (अस्ति) (हे) जनासः स इन्द्रः अस्ति।

शब्दार्थ – यः = जो, रध्रस्य = धनवान् का, चोदिता = प्रेरक, यः = जो, कृशस्य = निर्धन का, यः = जो, ब्राह्मणः = पुरोहित का, नाधमानस्य = सहायता चाहने वाले का, कीरेः = स्तुति गायक का, युक्तग्राव्णः = सोम पीसने के लिये पत्थरों को तैयार करने वाले का, यः = जो, अविता = रक्षक, सुशिप्रः = सुन्दर ओष्ठ वाला, सुतसोमस्य = सोम पीसने वाले का, सः = वह, जनासः = हे मनुष्यों, इन्द्रः =इन्द्र है।

अनुवाद – जो धनवान् का प्रेरक है, जो निर्धन का (प्रेरक है), जो सहायता चाहने वाले स्तुतिगायक पुरोहित का (प्रेरक है), सोम पीसने के लिये पत्थरों को तैयार किया

है तथा सोम पीस लिया है, जिसने ऐसे (यजमान) का जो सुन्दर ओष्ठ वाला सहायक है, हे मनुष्यों, वह इन्द्र है।

व्याकरण – नाधमानस्य = नाधृ णाधृयाच्ञोपतापैश्वर्याशीः षु सूत्र से लट् में शानच् प्रत्यय।

विशेष – शोभन हनु/सिर वाला **सुशिप्रः।**

यस्याश्वासः प्रदिशि यस्य गावो यस्य ग्रामा यस्य विश्वे रथासः।
यः सूर्यं य उषसं जजान यो अपां नेता स जनास इन्द्रः।।7।।

अन्वय – यस्य, प्रदिशि अश्वासः, यस्य (प्रदिशि) गावः, यस्य (प्रदिशि) ग्रामाः, यस्य (प्रदिशि) विश्वे रथासः (वर्तन्ते), यः सूर्यं यः उषसं जजान, यः अपां नेता, (हे) जनासः स इन्द्रः (अस्ति)।

शब्दार्थ – यस्य = जिसके, अश्वासः = घोड़े, प्रदिशि = आज्ञा में, यस्य = जिसकी, गावः = गायें, यस्य = जिसके, ग्रामाः = गाँव, यस्य = जिसके, विश्वे = सम्पूर्ण, रथासः = रथ, यः = जो, सूर्यम् = सूर्य को, यः = जो, उषसम् = उषा को, जजान = उत्पन्न किया, यः = जो, अपाम् = जल का, नेता = ले जाने वाला, सः = वह, जनासः = हे मनुष्यों, इन्द्रः = इन्द्र है।

अनुवाद – जिसकी विशिष्ट आज्ञा में अश्व हैं, जिसकी (आज्ञा में) गायें है, जिसकी (आज्ञा में) गाँव (जनपद) हैं, जिसकी (आज्ञा में) सम्पूर्ण रथ हैं, जिसने सूर्य तथा उषा को जन्म दिया, जो जल का नेता है, हे मनुष्यों, वह इन्द्र है।

व्याकरण – ग्रामाः = ग्रसतेऽत्रेति इति ग्रामाः जनपद।

विशेष – इन्द्र के शासन का वर्णन यहाँ किया गया है।

यं क्रन्दसी संयती विह्वयेतेपरेऽवर उभया अमित्राः।
समानं चिद्रथमातस्थिवांसा नाना हवेते स जनास इन्द्रः।।8।।

अन्वय – यं क्रन्दसी संयती विह्वयेते, (यं) परे अवरे उभयाः अमित्राः (ह्वयन्ते), (यं) समानं चिद् रथम् आतस्थिवांसा नाना हवेते, (हे) जनासः, सः इन्द्रः (अस्ति)।

शब्दार्थ – यम् = जिसको, कन्दसी = जोर से चिल्लाती हुई, संयती = एकसाथ (युद्ध में) जाती हुई, विह्वयेते = विभिन्न प्रकार से बुलाती है, परे = शक्तिशाली, अवरे = निर्बल, उभयाः = दोनों, अमित्राः = शत्रु, समानम् = एक ही, चित् = निश्चित अर्थ का वाचक एक निपात, रथम् = रथ पर, आतस्थिवांसा = बैठे हुये, नाना = अलग-अलग, हवेते = बुलाते हैं, सः = वह, जनासः = हे मनुष्यों, इन्द्रः = इन्द्र है।

अनुवाद – जिसको जोर से चिल्लाती हुई (तथा) एकसाथ (युद्ध में) जाती हुई (दोनों शत्रु-सेनायें) विभिन्न प्रकार से बुलाती हैं, जिसको शक्तिशाली तथा निर्बल दोनों शत्रु-दल (अपनी सहायता के लिये) बुलाते हैं, जिसको एक ही रथ पर बैठे हुए दो रथी अलग-अलग (अपनी सुरक्षा के लिए) बुलाते हैं, हे मनुष्यों, वह इन्द्र है।

व्याकरण – कन्दसी = रोदसी अर्थात् द्युलोक एवं भूलोक दोनों को व्याप्त करने वाली ध्वनि।

विशेष – विजय में सहायक इन्द्र की प्रार्थना का उल्लेख प्राप्त होता है।

अग्नि (1.1), इन्द्र (2.12), सवितृ (1.35),शिवसंकल्प (34.1-6)

यस्मान्न ऋते विजयन्ते जनासो यं युध्यमाना अवसे हवन्ते।
यो विश्वस्य प्रतिमानं बभूव यो अच्युतच्युत्स जनास इन्द्रः।।9।।

अन्वय – यस्मात् ऋते जनासः न विजयन्ते, यं युध्यमानाः अवसे हवन्ते, यः विश्वस्य प्रतिमानं बभूव, यः अच्युतच्युत् (हे) जनासः, स इन्द्रः (अस्ति)।

शब्दार्थ – यस्मात् = जिसके, न = नहीं, ऋते = विना, विजयन्ते = विजय प्राप्त करते हैं, जनासः = मनुष्य, यम् = जिसको, युध्यमानाः = युद्ध करते हुए, अवसे = सहायता के लिये, हवन्ते = बुलाते हैं, प्रतिमानम् = प्रतिरूप, बभूव = हुआ, यः = जो, अच्युतच्युत् = स्थिरों को भी गतिशील करने वाला, सः = वह, जनासः = हे मनुष्यों, इन्द्रः = इन्द्र है।

अनुवाद – जिसके बिना मनुष्य विजय नहीं प्राप्त करते, जिसको युद्ध करते हुए (सैनिक अपनी) सहायता/रक्षा के लिए बुलाते हैं, जो सबका प्रतिरूप है, जो स्थिर को गतिमान करने वाला है। हे मनुष्यों, वह इन्द्र है।

व्याकरण – अच्युताच्युत् = अच्युतानां क्षयरहितानां पर्वतादीनां च्यावयिताच्युति एवं क्षय रहित पर्वतादियों का प्रेरक।

विशेष – गति एवं क्षय रहित पर्वतों का प्रेरक इन्द्र को बताया गया है।

यः शश्वतो मह्येनो दधानान् अमन्यमानाञ्छर्वा जघान।
यः शर्धते नानुददाति शृध्यां यो दस्योर्हन्ता स जनास इन्द्रः।।10।।

अन्वय – यः शश्वतः महि एनः दधानान् अमन्यमानान् (जनान्) शर्वा जघान, यः शर्धते शृध्यां न अनुददाति, यःदस्योः हन्ता, (हे) जनासः, स इन्द्रः (अस्ति)।

शब्दार्थ – यः = जिसने, शश्वतः = अनेक, महि = बड़ा, महान्, एनः = पाप, दधानान् = धारण करने वालों को, अभिमानियों को, शर्वा = वज्र से, जघान = मारा, यः = जो, शर्धते = उत्साही के लिये, न = नहीं, अनुददाति = क्षमा करता है, शृध्याम् = उत्तेजनात्मक उत्साह को, यः = जो, दस्योः = दस्यु जाति को, हन्ता = मारने वाला, सः = वह, जनासः = हे मनुष्यों, इन्द्रः = इन्द्र।

अनुवाद – जिसने अनेक भयानक पाप करने वालों को, जो (इसका) आदर नहीं करते थे, अपने वज्र से मारा, जो उत्साही (व्यक्ति) के (उत्तेजनात्मक) उत्साह को क्षमा नहीं करता, जो दस्यु का घातक है, हे मनुष्यों, वह इन्द्र है।

व्याकरण – शर्वा = शृणाति शत्रूनेनेति शरुर्वज्रः, तृतीया एकवचन।

विशेष – दस्युओं से रक्षणार्थ भी इन्द्र विशेषतया स्तुत्य था।

यः शम्बरं पर्वतेषु क्षियन्तं चत्वारिंश्यां शरद्यन्वविन्दत्।
ओजायमानं यो अहिं जघान दानुं शयानं स जनास इन्द्रः।।11।।

अन्वय – यः पर्वतेषु क्षियन्तं शम्बरं चत्वारिंश्यां शरदि अन्वविन्दत्। ओजायमानम् अहिं शयानं दानुं (च) जघान, हे जनासः स इन्द्रः(अस्ति)।

शब्दार्थ – पर्वतेषु = शैलों पर, क्षियन्तम् = निवास करने वाले, चत्वारिंश्यां = चालीसवें, शरदि = वर्ष में, अन्वविन्दत् = खोजकर प्राप्त किया, ओजायमानं = शक्ति

का प्रदर्शन करने वाले, अहिं = सर्परूप में, शयानं = सुप्त, दानुम् = दानव को, जघान = मार डाला।

अनुवाद – जिसने पहाड़ों में रहने वाले शम्बर (नाम के राक्षस) को चालीसवें वर्ष (सुदीर्घकाल के अनन्तर) में खोज लिया तथा जिसने बल का प्रदर्शन करने वाले सर्परूप (या हन्ता) एवं लेटे हुए दानव (उस शम्बर) को मार डाला, हे मनुष्यों, वह इन्द्र है।

व्याकरण – चत्वारिंश्यां शरदि = चालीस शरद् के अनन्तर अर्थात् बहुकालानन्तर।

विशेष – शम्बराख्य = दैत्य के वध का वर्णन प्राप्त होता है।

> **यः सप्तरश्मिर्वृषभस्तुविष्मान् अवासृजत्सर्तवे सप्त सिन्धून्।**
> **यो रौहिणमस्फुरद् वज्रबाहुर्द्यामारोहन्तं स जनास इन्द्रः।।12।।**

अन्वय – यः सप्तरश्मिः वृषभः तुविष्मान् सप्त सिन्धून् सर्तवे अवासृजत्, यः वज्रबाहुः द्याम् आरोहन्तम् रौहिणम् अस्फुरत्, (हे) जनासः, सः इन्द्रः (अस्ति)।

शब्दार्थ – यः = जिसने, सप्तरश्मिः = सात किरणों वाले, वृषभः = वर्षा करने वाले, तुविष्मान् = बलवान्, अवासृजत् = मुक्त किया, सर्तवे = बहने के लिये, सप्त = सात, सिन्धून् = नदियों को, यः = जिसने, रौहिणम् = रौहिण नामक अनावृष्टि के राक्षस को, अस्फुरत् = मार दिया, वज्रबाहुः = वज्र धारण करने वाले ने, द्याम् = द्युलोक पर, आरोहन्तम् = चढ़ते हुये, सः = वह, जनासः = हे मनुष्यों, इन्द्रः = इन्द्र है।

अनुवाद – जिस सात किरणों वाले, शक्तिशाली ने सात नदियों को बहने के लिये मुक्त किया। जिस वज्र धारण करने वाले ने आकाश पर चढ़ते हुये रौहिण (अनावृष्टि) नामक असुर का वध किया, हे मनुष्यों, वह इन्द्र है।

व्याकरण – अस्फुरत् = स्फुर स्फुरणे, तुदादिगण, यहाँ मारने के अर्थ में प्रयुक्त है।

विशेष – सप्त रश्मिः का सन्दर्भ **वराहवः स्वतपसो विद्युन्महसो धूपयः श्वापयो गृहमेधाश्चेत्येते ये चेमेऽशिमिविद्विषः पर्जन्याः सप्त पृथिवीमभिवर्षन्ति वृष्टिभिः** तैत्तिरीय आरण्यक (1.9.4-5) में प्राप्त होता है।

> **द्यावा चिदस्मै पृथिवी नमेते शुष्माच्चिदस्य पर्वता भयन्ते।**
> **यः सोमपा निचितो वज्रबाहुर् यो वज्रहस्तः स जनास इन्द्रः।।13।।**

अन्वय – अस्मै द्यावा पृथिवी चित् नमेते। अस्य शुष्मात् पर्वताः चित् भयन्ते। यः सोमपा निचितः, वज्रबाहुः, यः वज्रहस्तः, (हे) जनासः स इन्द्रः (अस्ति)।

शब्दार्थ – अस्मै = इन्द्र के लिये, द्यावापृथिवीम् = द्युलोक और भूमि, चित् = ही, नमेते = प्रणाम करते हैं, अस्य = इसके, शुष्मात् = बल से, पर्वताः = पर्वत, भयन्ते = डरते हैं, यः = जो इन्द्र, सोमपा = सोमरस का आस्वादक, निचितः = कहा गया है, वज्रबाहुः = वज्र के समान, दृढ़ भुजा वाला, वज्रहस्तः = कुलिश (इन्द्र का वज्र नामक शस्त्र) को हाथ में रखने वाला, सः = वह, जनासः = हे मनुष्यों, इन्द्रः = इन्द्र है।

अनुवाद – उस (इन्द्र) के सामने द्युलोक और पृथ्वी लोक भी झुक जाते हैं, उसकी शक्ति से पर्वत भी भयाक्रान्त रहते हैं, जो **सोमपान करने वाला** इस रूप में प्रसिद्ध है (अथवा दृढ़ अंगो से युक्त है), वज्र के समान भुजाओं वाला है तथा जिसके हाथ में भी व्रज है, हे मनुष्यों वही इन्द्र है।

व्याकरण – **चित्** निपात का प्रयोग सर्वत्र भी के अर्थ में है।

विशेष – इन्द्र के सोमपा होने का विशेष उल्लेख प्राप्त होता है।

यः सुन्वन्तमवति यः पचन्तं यः शंसन्तं यः शशमानमूती।
यस्य ब्रह्म वर्धनं यस्य सोमो यस्येदं राधः स जनास इन्द्रः।।14।।

अन्वय – यः सुन्वन्तम् अवति, यः पचन्तम्, यः ऊती शंसन्तं, यः शशमानम् (अवति)। यस्य ब्रह्मवर्धनं (भवति), यस्य सोमः, यस्य इदं राधः, (हे) जनासः, स इन्द्रः (अस्ति)।

शब्दार्थ – यः = जो, सुन्वन्तम् = पीसने वाले की, अवति = रक्षा करता है, यः = जो, पचन्तम् = पुरोडाशादि हविरन्न पकाने वाले को, यः = जो, शंसन्तम् = प्रशंसा करने वाले को, यः = जो, शशमानम् = परिश्रम करने वाले को, ऊती = सहायता से, यस्य = जिसका, ब्रह्म = प्रार्थना, वर्धनम् = वृद्धि करने वाला, यस्य = जिसका, सोमः = सोम, यस्य = जिसका, इदम् = यह, राधः = धन, सः = वह, जनासः = हे मनुष्यों, इन्द्रः = इन्द्र है।

अनुवाद – जो सोम पीसने वाले की रक्षा करता है, जो (पुरोडाश) पकाने वाले की, जो प्रशंसा करने वाले की, जो परिश्रम करने वाले की (अपनी) सहायता से (रक्षा करता है), जिसकी वृद्धि करने वाला स्तोत्र है, जिसकी (वृद्धि करने वाला) सोम है, जिसकी (वृद्धि करने वाला) यह सम्पूर्ण धन है, हे मनुष्यों, वह इन्द्र है।

व्याकरण – **ऊती** स्वरक्षाविधिना अपने रक्षा के तरीके से।

विशेष – **शशमानम्** यह स्तोत्र का उच्चारणरूप परिश्रम करने वालों के लिये प्रयुक्त हुआ है।

यः सुन्वते पचते दुध्र आ चिद् वाजं दर्दर्षि स किलासि सत्यः।
वयं त इन्द्र विश्वह प्रियासः सुवीरासो विदथमा वदेम।।15।।

अन्वय – (हे) इन्द्र, यः दुध्रः (सन्) पचते वाजम् आ दर्दषि सः (त्वम्) सत्यः किल असि। ते प्रियासः सुवीरासः वयं विश्वह विदथम् आवदेम।

शब्दार्थ – यः = जो, सुन्वते = सोमरस निकालने वाले के लिए, पचते = पुरोडाशादि पकाने वाले के लिए, वाजम् = अन्न अथवा बल, दुध्रः = दुर्धर्ष, चित् आदर अर्थ में प्रयुक्त निपात, आ दर्दर्षि = बार-बार देते हो, सः = वह, किल = निश्चित रूप से, असि = हो, सत्यः = सत्यस्वरूप, वयम् = हम लोग, ते = तुम्हारे, इन्द्र = हे इन्द्र, विश्वह = सर्वदा, प्रियासः = प्रिय, सुवीरासः = सुन्दर वीरों से युक्त, विदथम् = स्तोत्र, आ वदेम = बोलें।

अनुवाद – हे इन्द्र, दुर्धर्ष असह्य प्रभाव युक्त होकर भी जो तुम सोम पीसने वाले के लिये तथा (पुरोडाश) पकाने वाले के लिये बार-बार बल एवं अन्न प्रदान करते हो, वह तुम निश्चित ही सत्य हो। हे इन्द्र, तुम्हारे प्रिय हम लोग सुन्दर बहादुर पुत्रों से युक्त होकर सर्वदा सुन्दर स्तोत्र बोलें।

व्याकरण – **दुध्रः** = दुर्धर्ष, अत्यन्त भयानक।

विशेष – कुछ विद्वान् **वाजमाददर्शि** का अर्थ शत्रुविजय से प्राप्त धन को यजमान को प्राप्त कराते हो, ऐसा भी अर्थ करते है।

10.4 सवितृ (ऋग्वेद 1.35)

ऋषि – हिरण्यस्तूप, देवता – सविता।
ह्वयाम्यग्निं प्रथमं स्वस्तये ह्वयामि मित्रावरुणाविहावसे।
ह्वयामि रात्रीं जगतो निवेशनीं ह्वयामि देवं सवितारमूतये।।1।।

अन्वय – स्वस्तये प्रथमम् अग्निं ह्वयामि। इह अवसे मित्रावरुणौ ह्वयामि। जगतः निवेशनीं रात्रीं ह्वयामि। ऊतये देवं सवितारं ह्वयामि।

शब्दार्थ – ह्वयामि = बुलाता हूँ, अग्निम् = अग्नि को, प्रथमम् = प्रथम देव, स्वस्तये = कल्याण के लिये, ह्वयामि = बुलाता हूँ,, मित्रावरुणौ = मित्र और वरुण को, इह = यहाँ, अवसे = रक्षा के लिये, ह्वयामि = बुलाता हूँ, रात्रीम् = रात्रि को, जगतः = सम्पूर्ण जंगम लोक को, निवेशनीम् = उपवेशन जन्य सुखदात्री, ह्वयामि = बुलाता हूँ, देवम् = देव को, सवितारम् = सवितृ को, ऊतये = रक्षा के लिये।

अनुवाद – मैं प्रथम (देव) अग्नि को (अपने) कल्याण के लिये बुलाता हूँ, मित्र तथा वरुण को यहाँ रक्षा के लिये बुलाता हूँ, सम्पूर्ण जंगम लोक को आराम देने वाली रात्रि को बुलाता हूँ, सवितृ देव को रक्षा/सहायता के लिये बुलाता हूँ।

व्याकरण – अवसे = अव् रक्षणार्थक धातु से असुन् प्रत्यय, चतुर्थी एकवचन।

विशेष – मित्र एवं वरुण कर्मफलों के रक्षक एवं पाप-पुण्य के नियामक हैं। मित्र का सम्बन्ध दिवस तथा वरुण का रात्रि के कार्य निरीक्षण से है।

आ कृष्णेन रजसा वर्तमानो निवेशयन्नमृतं मर्त्यं च।
हिरण्ययेन सविता रथेना देवो याति भुवनानि पश्यन्।।2।।

अन्वय – कृष्णेन रजसा आवर्तमानः, अमृतं मर्त्यं च निवेशयन्, हिरण्ययेन रथेन देवः सविता भुवनानि पश्यन् आ याति।

शब्दार्थ – कृष्णेन = अन्धकारमय, रजसा = अन्तरिक्ष से, आवर्तमानः = लौटते हुए, निवेशयन् = अपने-अपने कार्य में लगाते हुए, अमृतम् = देवताओं को, मर्त्यम् = मनुष्यों को, च = और, हिरण्ययेन = स्वर्णमय, सविता = सवितृ देव, रथेन = रथ से, देवः = देव, आयाति = आ रहे हैं, भुवनानि = लोकों को, पश्यन् = देखते हुए।

अनुवाद – अन्धकारमय अन्तरिक्ष से (होकर) लौटते हुए, देवताओं तथा मनुष्यों को (अपने-अपने कार्यों में) प्रवृत्त करते हुए स्वर्णमय रथ पर (चढ़कर) सवितृ देव सम्पूर्ण भुवनों को देखते हुए आ रहे हैं।

व्याकरण – हिरण्ययेन = हिरण्य+मयट् के अनन्तर ऋत्व्यवास्त्वय (पा.सू. 6.4.175) सूत्र से मकार लोप से निपातित।

विशेष – सूर्य के कर्म का प्रतिपादन यहाँ प्राप्त होता है।

याति देवः प्रवता यात्युद्वता याति शुभ्राभ्यां यजतो हरिभ्याम् ।
आ देवो याति सविता परावतोऽप विश्वा दुरिता बाधमानः।।3।।

अन्वय – यजतः देवः शुभ्राभ्यां हरिभ्यां याति, प्रवता याति, उद्वता याति। देवः सविता विश्वा दुरिता अप बाधमानः परावतः आ याति।

शब्दार्थ – याति = जाते हैं, देवः = देव, प्रवता = नीचे के मार्ग से, याति = जाते हैं, उद्वता = ऊपर के मार्ग से, याति = जाते हैं, शुभ्राभ्याम् = सफेद रंग के, यजतः = पूजनीय, हरिभ्याम् = दो अश्वों के साथ, देवः = देव, आ याति = आ रहे हैं, सविता = सवितृ, परावतः = बहुत दूर से, विश्वा = सम्पूर्ण, दुरिता = पापों को, अपबाधमानः = नष्ट करते हुए।

अनुवाद – (सवितृ) देव नीचे (मार्ग) से जाते हैं ऊपर (मार्ग) से जाते हैं, पूज्यनीय (सवितृ देव) श्वेत रंग के दो अश्वों के साथ आते हैं। सम्पूर्ण बुराइयों/पापों को दूर/नष्ट करते हुए सवितृ देव बहुत दूर से आ रहे हैं।

व्याकरण – **प्रवता** प्र उपसर्गपूर्वक वन् धातु से क्विप् तृतीया एकवचन, **यजते** यञ् धातु से कर्म में अतच् प्रत्यय करने पर निष्पन्न।

विशेष – सूर्य/सविता के त्रिविध मार्ग अवलम्बन का विशेष वर्णन है।

> **अभीवृतं कृशनैर्विश्वरूपं हिरण्यशम्यं यजतो बृहन्तम्।**
> **आस्थाद्रथं सविता चित्रभानुः कृष्णा रजांसि तविषीं दधानः।।4।।**

अन्वय – चित्रभानुः यजतः सविता कृष्ण रजांसि (प्रति) तविषीं दधानः कृशनैः अभिवृतं विश्वरूपं हिरण्यशम्यं बृहन्तं रथम् आ अस्थात्।

शब्दार्थ – अभीवृतम् = आमने-सामने से सुसज्जित, कृशनैः = स्वर्ण से, विश्वरूपं = विविध रूप वाले, हिरण्यशम्यम् = स्वर्ण कील वाले, यजतः = पूजनीय, बृहन्तम् = ऊँचे, आ अस्थात् = आरूढ़ हुए, रथम् = रथ पर, सविता = सवितृ देव, चित्रभानुः = विचित्र किरणों वाले, कृष्णा = अन्धकारमय, रजांसि = लोकों, तविषीम् = बल स्वकीय प्रकाशरूप, दधानः = धारण करते हुए।

अनुवाद – स्वर्ण से सुसज्जित, विविध रूप वाले, (रथ के जुआं में) स्वर्ण की कील वाले, ऊँचे रथ पर, विचित्र किरणों से युक्त, पूजनीय सवितृ देव, अन्धकारमय लोकों के विरुद्ध प्रकाशरूप शक्ति धारण करते हुए आरूढ़ हुए हैं।

व्याकरण – **तविषीं** = तव+टिषच्+ङीप्, द्वितीया एकवचन, **दधान** = धा धातु से लट् के स्थान पर शानच् करने पर।

विशेष – **कृशनम्** निघुण्ट पाठ में स्वर्ण के नामों में परिगणित है।

> **वि जनाञ्छ्यावाः शितिपादो अख्यन् रथं हिरण्यप्रउगं वहन्तः।**
> **शश्वद्विशः सवितुर्दैव्यस्योपस्थे विश्वा भुवनानि तस्थुः।।5।।**

अन्वय – (सवितुः देवस्य) शितिपादः श्यावाः हिरण्यप्रउगं रथं वहन्तः जनान् वि अख्यन्। शश्वद् विशः विश्वा भुवनानि (च) दैव्यस्य सवितुः उपस्थे तस्थुः।

शब्दार्थ – जनान् = लोगों को, श्यावाः = सवितृ देव के अश्वों ने, शितिपादः = सफेद पैर वाले, व्यख्यन् = विशेष रूप से प्रकाशित किया है, रथम् = रथ को, हिरण्यप्रउगम् = स्वर्ण की कील वाले, वहन्तः = खींचते हुए, शश्वत् = सम्पूर्ण, विशः = निवास स्थान, सवितुः = सवितृ की, दैव्यस्य = देव, उपस्थे = गोद में, विश्वा = सम्पूर्ण, भुवनानि = लोक, तस्थुः = स्थित है।

अनुवाद – सफेद पैर वाले (सवितृ देव के) अश्वों ने, स्वर्णनिर्मित जुआं वाले रथ को खींचते हुये प्राणियों को विशेष रूप से प्रकाशित किया है। सम्पूर्ण निवास-स्थान तथा सम्पूर्ण लोक प्रकाशमान देव सवितृ की गोद में स्थित है।

व्याकरण – **दैव्यः** = देव ही दैव्य है, देव शब्द से स्वार्थ में यञ् प्रत्यय, **श्यावाः** = इस नामके सूर्य के अश्व होने के कारण यह सविता के नामों में निघण्टु में पढ़ा गया है।

विशेष – **प्रउग** = रथ के मुख और ईषा (दोनों) के आगे युगबन्धन का स्थान।

तिस्रो द्यावः सवितुर्द्वा उपस्थाँ एका यमस्य भुवने विराषाट्।
आणिं न रथ्यममृताधि तस्थुरिह ब्रवीतु य उ तच्चिकेतत्।।6।।

अन्वय – तिस्रः द्यावः (सन्ति तेषां मध्ये) द्वौ सवितुः उपस्था, एका (या) विराषाट् यमस्य भुवने। अमृता आणिं न रथ्यम् अधि तस्थुः। यः उ तत् चिकेतत् इह ब्रवीतु।

शब्दार्थ – तिस्रः = तीन, द्यावः = द्युलोक, सवितुः = सवितृ देव की, द्वौ = दो लोक, उपस्था = गोद में, एका = एक, यमस्य = यम के, भुवने = लोक में, विराषाट् = मरे व्यक्तियों का निवास-स्थान, आणिम् = धुरा, न = तरह, रथ्यम् =रथ के, अमृता = अमर, अधि तस्थुः = आश्रित हैं, इह = यहाँ, ब्रवीतु = कहे, यः = जो, उ = निश्चित अर्थ का वाचक एक निपात, तत् = उसे, चिकेतत् = जाना है।

अनुवाद – तीन लोक (हैं), (उनमें से) दो सवितृ की गोद में (हैं), एक जो मरे व्यक्तियों का निवास-स्थान है, यम के लोक में (हैं)। (सम्पूर्ण) अमर (प्रकाशमान पदार्थ) रथ के धुरे की तरह उसी पर आश्रित है, (वह) जिसने (सवितृ देव के महत्त्व को) जाना है, यहाँ उसे कहे।

व्याकरण – **विराषाट्** = वृञ् वरणे धातु से घञर्थ में क प्रत्यय, तान् सहते इति **छन्दसि सह** सूत्र से ण्वि तथा **सहेः साडः सः** से षत्व।

विशेष – लोकत्रय का निरूपण यहाँ प्राप्त होता है।

वि सुपर्णो अन्तरिक्षाण्यख्यद् गभीरवेपा असुरः सुनीथः।
क्वे३दानीं सूर्यः कश्चिकेत कतमां द्यां रश्मिरस्या ततान ।।7।।

अन्वय – सुपर्णः गभीरवेपाः असुरः सुनीथः अन्तरिक्षाणि वि अख्यत्। इदानीं सूर्यः क्व? कः चिकेतः? अस्य रश्मिः कतमां द्यां ततान?

शब्दार्थ – सुपर्णः = सुन्दर किरण वाला, अन्तरिक्षाणि = अन्तरिक्ष लोकों को, व्यख्यत् = प्रकाशित किया है, गभीरवेपाः = गम्भीर कम्पनयुक्त किरणों वाले, असुरः = प्राण देने वाले, प्रज्ञावान्, सुनीथः = प्रशस्त रूप से मार्गदर्शन करने वाला, क्व = कहाँ, इदानीम् = इस समय, सूर्यः = सूर्य, कः = कौन, चिकेत = जाना है, कतमाम् = किस, द्याम् = लोक तक, रश्मिः = किरण, आ ततान = फैली है।

अनुवाद – सुन्दर एवं गम्भीर कम्पनयुक्त किरणों वाले, प्राण देने वाले तथा अच्छी प्रकार से नेतृत्व करने वाले सूर्य (जिन्होंने दिन में) अन्तरिक्ष लोकों को विशेष रूप से प्रकाशित किया था, इस समय (रात्रि में) कहाँ है और उनकी किरणें किस लोक तक फैली हैं, यह कौन जानता है?

व्याकरण – **सुनीथः** = सुपूर्वक नी धातु से क्थन् प्रत्यय, **चिकेत** = कित् धातु से लिट् में।

विशेष – असून् अर्थात् प्राणों को देने वाला **असुरः।**

अष्टौ व्यख्यत्ककुभः पृथिव्यास्त्री धन्व योजना सप्त सिन्धून्।
हिरण्याक्षः सविता देव आगाद्दधद्रत्ना दाशुषे वार्याणि ।।8।।

अन्वय – (सविता देवः) अष्टौ पृथिव्याः ककुभः, त्री योजना धन्व, सप्त सिन्धून् वि अख्यत्। हिरण्याक्षः सविता देवः दाशुषे वार्याणि रत्ना दधत् आ अगात्।

शब्दार्थ – अष्टौ = आठ, व्यख्यत् = प्रकाशित किया है, ककुभः = दिशाओं को, पृथिव्याः = पृथिवी के, त्री = तीन, धन्व = अन्तरिक्षादि को, योजना = प्राणियों के कर्मों को, सप्त = सात, सिन्धून् = नदियों को, हिरण्याक्षः = स्वर्णमयी आँख वाले, सविता = सवितृ, देवः = देव, आ अगात् = आये हैं, दधत् = धारण करते हुए, रत्ना = बहुमूल्य धनों को, दाशुषे = हवि प्रदान करने वाले के लिये, वार्याणि = वरणीय।

अनुवाद – पृथिवी की आठ दिशाओं, तीन अन्तरिक्षादि लोकों, प्राणियों के कर्मों तथा सात नदियों को (सवितृ देव ने) प्रकाशित किया है। स्वर्णमयी आँख वाले सवितृ देव, हवि प्रदान करने वाले के लिये वरणीय धन को धारण करते हुए आये हैं।

व्याकरण – **दधत्** धा धातु से शतृ प्रत्यय।

विशेष – हितकर एवं रमणीय होता है, **हिरण्यम्।**

हिरण्यपाणिः सविता विचर्षणिरुभे द्यावापृथिवी अन्तरीयते।
अपामीवां बाधते वेति सूर्यमभि कृष्णेनरजसा द्यामृणोति ।।9।।

अन्वय – हिरण्यपाणिः विचर्षणिः सविता उभे द्यावापृथिवी अन्तः ईयते, अमीवाम् अप बाधते, सूर्यं वेति, कृष्णेन रजसा द्याम् अभि ऋणोति।

शब्दार्थ – हिरण्यपाणिः = स्वर्णहस्त वाले, सविता = सवितृ, विचर्षणिः = सबको देखने वाले, उभे = दोनों, द्यावापृथिवी = द्युलोक तथा पृथिवी, अन्तः = मध्य में, ईयते = आते हैं, अमीवाम् = रोग को, अप बाधते = दूर करते हैं, वेति = जाते हैं, सूर्यम् = सूर्य के पास, कृष्णेन = अन्धकारयुक्त, रजसा = लोक से, द्याम् = आकाश को, अभि ऋणोति = व्याप्त करते हैं।

अनुवाद – स्वर्ण हस्त वाले, सबको देखने वाले, सविता देवता, दोनों आकाश तथा पृथिवी के बीच विचरण करते हैं। रोग को दूर करते हैं, सूर्य के पास जाते हैं, अन्धकारयुक्त लोक से (होकर) द्युलोक को व्याप्त करते हैं।

व्याकरण – **ऋणोति** = गत्यर्थक ऋणु धातु से तनादि में उः प्रत्यय।

विशेष – यहाँ सविता के विशिष्ट कर्मों का उल्लेख प्राप्त होता है।

हिरण्यहस्तो असुरः सुनीथः सुमृळीकः स्ववाँ यात्वर्वाङ्।
अपसेधन् रक्षसोयातुधानानस्थाद्देवः प्रतिदोषं गृणानः।।10।।

अन्वय – हिरण्यहस्तः असुरः सुनीथः सुमृळीकः स्ववान् (सविता) अर्वाङ् यातु। (सविता) देवः रक्षसः यातुधानान् (च) अपसेधन् प्रतिदोषं गृणानः अस्थात्।

शब्दार्थ – हिरण्यहस्तः = स्वर्ण हस्त वाले, असुरः = प्राण देने वाले, सुनीथः = सुन्दर मार्गदर्शन करने वाले, सुमृळीकः = दयालु, स्ववान् = धनवान्, प्रकाशवान्, यातु = जावें, अर्वाङ् = हमारी तरफ, अपसेधन् = दूर करते हुये, रक्षसः = राक्षसों को, यातुधानान् = मायावियों को, अस्थात् = स्थित हुए हैं, देवः = देव, प्रतिदोषम् = प्रतिरात्रि को, गृणानः = स्तूयमान।

अनुवाद – स्वर्णहस्त वाले, प्राणदाता, सुन्दर मार्गदर्शक, दयालु तथा धनवान् सवितृ हमारी तरफ (यज्ञ में) आयें। प्रति रात्रि को स्तूयमान होते हुए देव (सवितृ) राक्षसों तथा मायावियों को दूर करते हुए अवस्थित होते हैं।

व्याकरण – **प्रतिदोषम्** दोषां दोषां प्रति वीप्सालक्षणे अर्थ में अव्ययीभाव समास।

विशेष – **यज्ञरक्षार्थ** सविता से प्रार्थना का उल्लेख प्राप्त होता है।

ये ते पन्थाः सवितः पूर्व्यासोऽरेणवः सुकृता अन्तरिक्षे।
तेभिर्नो अद्य पथिभिः सुगेभी रक्षा च नो अधि च ब्रूहि देव।।11।।

अन्वय – (हे) सवितः, ये ते पूर्व्यासः अरेणवः सुकृताः पन्थाः अन्तरिक्षे (सन्ति) तेभिः सुगेभिः पथिभिः अद्यः नः रक्ष। (हे) देव (नः) अधि ब्रूहि च।

शब्दार्थ – ये = जो, ते = तुम्हारे, पन्थाः = मार्ग, सवितः = हे सवितृ, पूर्व्यासः = पहिले के, अरेणवः = धूलिरहित, सुकृताः = अच्छी प्रकार से निर्मित, अन्तरिक्षे = अन्तरिक्ष में, तेभिः = उनसे, नः = हमारी, अद्य = आज, पथिभिः = मार्गों से, सुगेभिः = सुगम, रक्ष = रक्षा करो, च = और, नः = हमारी, च = और, अधि ब्रूहि = तरफ से बोलो, देव = हे देव।

अनुवाद – हे सवितृ, तुम्हारे प्राचीन तथा धूलि रहित मार्ग, जो अन्तरिक्ष में अच्छी प्रकार से निर्मित हैं, आज उन्हीं सुगम मार्गों से (यहाँ आकर) मेरी रक्षा करो तथा हे देव, हमारी तरफ से बोलो।

व्याकरण – **अरेणवः** = न सन्ति रेणवः येषु तथाभूताः बहुव्रीहि समास।

विशेष – सूर्य के मार्ग का वर्णन प्राप्त होता है।

10.5 शिवसंकल्प (यजुर्वेद 34.1-6)

ऋषि – शिवसंकल्प, देवता – मन।
यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवं तदु सुप्तस्य तथैवैति।
दूरङ्गमं ज्योतिषां ज्योतिरेकं तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु।।1।।

अन्वय – यत् (मनः) जाग्रतः दूरम् उद् आ एति, यत् दैवम्, तत् (यत्) उ सुप्त य तथा एव एति, यत् दूरंगमम्, यत् ज्योतिषाम् एकं ज्योतिः, तत् मे मनः शिवसंकल्पम् अस्तु।

शब्दार्थ – यत् = जो मन, जाग्रतः = जागते हुए मनुष्य का, दूरम् = दूर, उदैति = जाता है, दैवम् = आत्मदर्शन करने वाला, तत् = जो, उ = और, सुप्तस्य = सोये हुए मनुष्य का, तथा = उसी प्रकार, एव = ही, एति = लौट आता है, दूरंगमम् = दूर जाने वाला अर्थात् अतीत, अनागत, वर्तमान सब पदार्थों को जानने वाला, ज्योतिषाम् = श्रोत्रादि ज्ञानेन्द्रियों का, ज्योतिः = प्रकाश, तत् = वह, मे = मेरा, मनः = मन, शिवसंकल्पम् = शुभ संकल्प वाला, अस्तु = हो।

अनुवाद – जो मन पुरुष की जाग्रत अवस्था में (नेत्र आदि अन्य ज्ञानेन्द्रियों की अपेक्षा) अधिक दूर जाता है, (जो) आत्मा का दर्शन करने वाला है, जो (पुरुष की) सुषुप्ति अवस्था में उसी प्रकार लौट आता है (जिस प्रकार जाग्रत अवस्था में दूर जाता है), (जो) दूर जाने वाला है, और जो सब बाह्य इन्द्रियों का एकमात्र प्रकाशक है, वह मेरा मन शुभ संकल्प वाला हो।

अग्नि (1.1), इन्द्र (2.12), सवितृ (1.35),शिवसंकल्प (34.1-6)

व्याकरण – **उदैति** = उत् एवं आ उपसर्गपूर्वक इण् गतौ धातु से निष्पन्न।

विशेष – मन की प्रकृति का प्रतिपादन प्राप्त होता है।

> **येन कर्माण्यपसो मनीषिणो यज्ञे कृण्वन्ति विदथेषु धीराः।**
> **यदपूर्वं यक्षमन्तः प्रजानां तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु।।2।।**

अन्वय – येन (मनसा) अपसः धीराः मनीषिणः यज्ञे विदथेषु (च) कर्माणि कृण्वन्ति, यत् अपूर्वम्, (यत्) यक्षम्, (यत्) प्रजानाम् अन्तः, तत् मे मनः शिवसंकल्पम् अस्तु।

शब्दार्थ – येन = जिस मन से, कर्माणि = काम, अपसः = कर्मनिष्ठ, कर्मठ प्रवृत्ति वाले, मनीषिणः = मेधावी पुरुष, यज्ञे = यज्ञ में, कृण्वन्ति = करते हैं, विदथेषु = ज्ञान होने पर, धीराः = बुद्धिमान् पुरुष, यत् = जो मन, अपूर्वम् = जिसके पूर्व कोई इन्द्रिय नहीं होती अर्थात् समस्त इन्द्रियों से पूर्व उत्पन्न, यक्षम् = यज्ञ करने में समर्थ अथवा समस्त इन्द्रियों से पूर्व उत्पन्न होने के कारण पूज्य, अन्तः = शरीर के भीतर, प्रजानाम् = प्रजा के, प्राणिमात्र के, तत् = वह, मे = मेरा, मनः = मन, शिवसंकल्पम् = शुभ संकल्प वाला, अस्तु = हो।

अनुवाद – जिस मन से कर्मनिष्ठ बुद्धिमान् मेधावी पुरुष यज्ञ में तथा पूजाओं में कर्म करते हैं, जो सबसे प्रथम उत्पन्न होता है और यज्ञ करने में समर्थ है और जो प्राणिमात्र के भीतर रहता है, वह मेरा मन शुभ संकल्प वाला हो।

व्याकरण – **अपसः** = अप यह कर्म का नाम है यह जिसमें विद्यमान हो वह अपस्वी।

विशेष – समस्त इन्द्रियों में मन के सर्वप्रथम उद्भव का वर्णन किया गया है।

> **यत्प्रज्ञानमुत चेतो धृतिश्च यज्ज्योतिरन्तरमृतं प्रजासु।**
> **यस्मान्न ऋते किं चन कर्म क्रियते तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु।।3।।**

अन्वय – यत् (मनः) प्रज्ञानम्, उत चेतः, धृतिः च, यत् प्रजासु अन्तः अमृतं ज्योतिः (अस्ति) यस्मात् ऋते किं चन कर्म न क्रियते, तत् मे मनः शिवसंकल्पम् अस्तु।

शब्दार्थ – यत् = जो मन, प्रज्ञानम् = विशेष ज्ञान का साधन, उत = और, चेतः = सामान्य ज्ञान कराने वाला, धृतिः = धैर्यरूप, च = और, यत् = जो, ज्योतिः = प्रकाशक, अन्तः = भीतर, अमृतम् = अमर, प्रजासु = प्राणियों में, यस्मात् = जिससे, न = नहीं, ऋते = बिना, किम् = कुछ, चन = भी, कर्म = काम, क्रियते = किया जाता है, तत् = वह, मे = मेरा, मनः = मन, शिवसंकल्पम् = शुभ संकल्प वाला, अस्तु = हो।

अनुवाद – जो मन विशेष ज्ञान और सामान्य ज्ञान (का साधन) है, जो धैर्यरूप है, जो प्राणियों के भीतर अमर ज्योति है, और जिसके बिना कोई काम नहीं किया जा सकता, वह मेरा मन शुभ संकल्प वाला हो।

व्याकरण – चेतः = चिति संज्ञाने धातु से ण्यन्त में असुन् प्रत्यय, चेतयति अर्थात् सम्यक् रीति बताता है वह।

विशेष –मन के सायुज्याभाव में कार्य सिद्धि नहीं हो सकती ऐसा भाव प्रकट किया गया है।

येनेदं भूतं भुवनं भविष्यत् परिगृहीतममृतेन सर्वम्।
येन यज्ञस्तायते सप्तहोता तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु।।4।।

अन्वय – येन अमृतेन (मनसा) इदं भूतं भुवनं भविष्यत् सर्वं परिगृहीतम्, येन सप्तहोता यज्ञः तायते, तत् मे मनः शिवसंकल्पम् अस्तु।

शब्दार्थ – येन = जिस मन के द्वारा, इदम् = यह, भूतम् = भूतकाल का, भुवनम् = वर्तमान काल का, भविष्यत् = भविष्यत् काल का, परिगृहीतम् = जाना जाता है, अमृतेन = अमर मन के द्वारा, सर्वम् = संसार का सब वस्तुजगत, येन = जिस मन के द्वारा, यज्ञः = यज्ञ, तायते = किया जाता है, सप्तहोता = सात होता वाला अग्निष्टोम, तत् = वह, मे = मेरा, मनः = मन, शिवसंकल्पम् = शुभ संकल्प वाला, अस्तु = हो।

अनुवाद – जिस अमर (मन) के द्वारा इस संसार में भूत, भविष्य और वर्तमान काल के सब पदार्थ जाने जाते हैं, और जिसके द्वारा सात होता वाला (अग्निष्टोम) यज्ञ किया जाता है, वह मेरा मन शुभ संकल्प वाला हो।

व्याकरण – तायते = विस्तार्यते **तनोतेर्यकि** सूत्र से आकार।

विशेष – अग्निष्टोम = सोमयाग की सप्त संस्था में प्रथम है।

यस्मिन्नृचः साम यजूंषि यस्मिन् प्रतिष्ठिता रथनाभाविवाराः।
यस्मिश्चित्तं सर्वमोतं प्रजानां तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ।।5।।

अन्वय – यस्मिन् (मनसि) ऋचः साम यजूंषि रथनाभौ आराः इव प्रतिष्ठिताः, यस्मिन् प्रजानां सर्वं चित्तम्, ओतम्, तत् मे मनः शिवसंकल्पम् अस्तु।

शब्दार्थ – यस्मिन् = जिस मन में, ऋचः = ऋचायें, साम = सामगान, यजूंषि = यजुष्, यस्मिन् = जिसमें, प्रतिष्ठिताः = प्रतिष्ठित हैं, रथनाभौ = रथचक्र की नाभि में, इव = समान, अराः = तिल्लियां, यस्मिन् = जिसमें, चित्तम् = ज्ञान, सर्वम् = सर्वपदार्थविषयक, ओतम् = व्याप्त है, प्रजानाम् = प्रजाओं का, तत् = वह, मे = मेरा, शिवसंकल्पम् = शुभ संकल्प वाला, अस्तु = हो।

अनुवाद – रथचक्र की नाभि में तिल्लियों की तरह जिस मन में ऋचायें, साम और यजुष् प्रतिष्ठित होते हैं, जिसमें प्राणियों का सर्वपदार्थ विषयक ज्ञान निहित है, वह मेरा मन शुभ संकल्प वाला हो।

व्याकरण – यजूंषि = यजुष् हलन्त नपुंसकलिंग शब्द प्रथमा बहुवचन।

विशेष – ज्ञान का केन्द्र मन को प्रतिष्ठित किया गया है।

सुसारथिरश्वानिव यन्मनुष्यान्नेनीयतेऽभीशुभिर्वाजिन इव।
हृत्प्रतिष्ठं यदजिरं जविष्ठं तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु।।6।।

अन्वय – यत् (मनः) सुसारथिः अश्वान् इव, अभीशुभिः वाजिन इव मनुष्यान् नेनीयते, यत् हृत्प्रतिष्ठम्, अजिरं, जविष्ठम्, तत् मे मनः शिवसंकल्पम् अस्तु।

शब्दार्थ – सुसारथिः = अच्छा सारथी, अश्वान् = घोड़ों को, इव = समान, यत् = जो मन, मनुष्यान् = मनुष्यों को, नेनीयते = अत्यन्त इधर-उधर ले जाता है, अभीशुभिः = लगामों से, वाजिनः = घोड़ों को, इव = समान, हृत्प्रतिष्ठम् = हृदय में स्थित, यत् = जो मन, अजिरम् = जरारहित, जविष्ठम् = अतिशय वेगवान्, तत् = वह, मे = मेरा, मनः = मन, शिवसंकल्पम् = शुभ संकल्प वाला, अस्तु = हो।

अनुवाद – जो मन मनुष्यों को बार-बार इधर-उधर प्रेरित करता है जैसे अच्छा सारथी घोड़ों को लगामों द्वारा घोड़ों की तरह अपने वश में रखता है, जो हृदय में स्थित है, जो जरा से रहित और अत्यन्त वेगवान् है, वह मेरा मन शुभ संकल्प वाला हो।

व्याकरण – **जविष्ठ** = जव गति/वेग के लिये प्रयुक्त है, अतः अतिशय गति से युक्त।

विशेष –मन की चंचलता एवं निग्रह का प्रतिपादन है।

10.6 सारांश

प्रिय विद्यार्थियों! इस इकाई में आपने अग्नि, इन्द्र, सवितृ और शिवसंकल्प सूक्त के मन्त्रों का अध्ययन किया। अग्निसूक्त में अग्नि देवताओं के लिये हवियों के वाहक की भूमिका में है। साथ ही समस्त यजमानों के प्रथम स्तुत्य भी है। अग्नि से यजमान विविध प्रकार के धन की पुष्टि हेतु तथा संरक्षण हेतु प्रार्थना करते हैं।

इन्द्र सूक्त में इन्द्र के स्वरूप एवं कार्यों का सम्यक्तया निरूपण किया गया है। इन्द्र वृष्टि का कारक है, यह वृत्र नामक असुर का वज्र से वधकर प्राणियों के लिये मेघों से वृष्टि करता है। इन्द्र अत्यन्त प्रभावशाली एवं स्तुत्य है।

सवितृ सूक्त सूर्य की गति, पराक्रम, प्रभाव, स्वरूप तथा कर्म को व्यक्त करता है। सूर्य अर्थात् सविता पाप तथा अन्धकार का नाशक होकर निरन्तर गतिशील रहता है। यह समस्त प्राणियों का प्रेरक भी है। इसकी प्रेरणा के प्रभाव से समस्त प्राणियों की प्रवृत्ति स्वकर्त्तव्य सम्पादन में होती है।

यजुर्वेदस्थ शिवसंकल्पसूक्त में एक ओर मन की गति एवं चंचलता का वर्णन है, वहीं दूसरी ओर मन के सायुज्य के अभाव में किसी कार्य की सिद्धि असम्भव है, अतः मन का निग्रह विविध कार्यों के सम्पादनार्थ आवश्यक है, यह प्रतिपादित किया गया है। वस्तुतः शरीर के द्वारा कार्य की पूर्णता कराने में मुख्य कारक मन ही है। अतः इस प्रकार का हमारा मन कल्याण के संकल्प से युक्त हो ऐसी प्रार्थना की गयी है।

10.7 शब्दावली

हविर्ग्राहक – हवि को ग्रहण करने वाला

स्तम्भित – रोका, स्तम्भ के समान दृढ़ करना

सोमपा – सोमरस का पान करने/पीने वाला

भुवन – लोक, यथा– पृथिवी लोक

निग्रह – नियन्त्रण, दबाना, संयमन करना

सायुज्याभाव – किसी में युक्त होने का भाव सायुज्य, एतद् अभाव कमी

वरणीय – चुनने योग्य, वरण करने योग्य

10.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. **द न्यू वैदिक सिलेक्शन** प्रथम एवं द्वितीय भाग, तैलंग एवं चौबे, भारतीय विद्या प्रकाशन, वाराणसी।
2. **ऋग्वेद संहिता,** सायण भाष्य, राष्ट्रियसंस्कृतसंस्थानम्, नई दिल्ली।
3. **शुक्लयजुर्वेदसंहिता,** महीधर भाष्य, जगदीश लाल शास्त्री, मोतीलाल बनारसीदास।
4. **अथर्ववेद संहिता,** सायण भाष्य,विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान, होशियारपुर।

10.9 अभ्यास प्रश्न

1. अग्नि सूक्त के आधार पर अग्नि की विविध भूमिकाओं का वर्णन कीजिए।
2. ''**अग्निना रयिमश्नवत्पोषमेव दिवेदिवे। यशसं वीरवत्तमम्।।**'' मन्त्र की ससन्दर्भ व्याख्या कीजिए।
3. इन्द्र के कर्मों का उल्लेख कीजिए।
4. ''**यस्मान्न ऋते विजयन्ते जनासो यं युध्यमाना अवसे हवन्ते।**
   यो विश्वस्य प्रतिमानं बभूव यो अच्युतच्युत्स जनास इन्द्रः।।'' मन्त्र की ससन्दर्भ व्याख्या कीजिए।
5. सवितृ सूक्त के सार को संक्षेप में प्रकट कीजिए।
6. ''**वि जनाञ्छ्यावाः शितिपादो अख्यन् रथं हिरण्यप्रउगं वहन्तः।**
   शश्वद्विशः सवितुर्दैव्यस्योपस्थे विश्वा भुवनानि तस्थुः।।'' मन्त्र की ससन्दर्भ व्याख्या कीजिए।
7. ''**येनेदं भूतं भुवनं भविष्यत् परिगृहीतममृतेन सर्वम्।**
   येन यज्ञस्तायते सप्तहोता तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु।।'' मन्त्र की ससन्दर्भ व्याख्या कीजिए।
8. शिवसंकल्पसूक्त में किस प्रकार की कामना की गयी हैं? संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।

इकाई11 वाक् (10.125), पुरुष (10.90), मरुत्(1.85), अभय (6.40)

इकाई की रूपरेखा

11.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप –

- ऋग्वेद एवं अथर्ववेद के प्रमुख सूक्तों के वर्ण्य-विषय से अवगत हो सकेंगे।
- वाक्, पुरुष, मरुत् आदि के कर्म, गुण एवं स्वरूपों के वैदिक आधार से अवगत हो सकेंगे।
- सृष्टि के विशिष्ट स्वरूप को प्रतिपादित कर सकेंगे।
- एतत्सम्बद्ध ज्ञान का उपयोग आवश्यकतानुगत अपेक्षित स्थलों पर कर सकेंगे।

11.1 प्रस्तावना

विश्व साहित्य में वेद प्राचीनतम है। वेदों के ऋक्, यजु, साम एवं अथर्व के भेद से चार प्रकार प्रसिद्ध हैं। कात्यायन के अनुसार वेदों का त्रिविधविभाग किया गया है–**ऋचो यजूंषि सामानि निगदाः मन्त्राः।** ऋक् पद्यात्मक, यजुष् गद्यात्मक, साम गीतात्मक। अथर्ववेद का ग्रथन ऋक् अर्थात् पद्यात्मक होने के कारण एतत् सम्बद्ध निर्देश पृथक् से नहीं किया गया है। महाभाष्य एवं चरणव्यूह के अनुसार ऋग्वेद की 21, यजुर्वेद की 101, सामवेद की 1000 तथा अथर्ववेद की 09 शाखायें थी, किन्तु वर्तमान में क्रमशः 03, 06, 03 एवं दो उपलब्ध होती हैं।

भारतीय परम्परा में वेद अपौरुषेय माने जाते हैं। वेदमन्त्रों का कोई कर्त्ता नहीं है, अपितु ऋषियों द्वारा ये समाधि अवस्था में द्रष्ट हैं, जिसका उल्लेख वैदिक संहिताओं में प्राप्त होता है। इस इकाई में आप ऋग्वेद तथा अथर्ववेद के कतिपय प्रमुख सूक्तों का अध्ययन करेंगे।

11.2 वाक् (ऋग्वेद10.125)

ऋषि – वाक्, देवता – परमात्मा।

अहं रुद्रेभिर्वसुभिश्चराम्यहमादित्यैरुत विश्वदेवैः।
अहं मित्रावरुणोभा बिभर्म्यहमिन्द्राग्नी अहमश्विनोभा।।1।।

अन्वय – अहं रुद्रेभिः वसुभिः चरामि, अहम् आदित्यैः उत विश्वदेवैः (चरामि), अहं उभा मित्रावरुणा बिभर्मि, अहम् इन्द्राग्नी, अहम् उभा अश्विना (बिभर्मि)।

शब्दार्थ – अहम् = मैं, रुद्रेभिः = रुद्रों के साथ, वसुभिः = वसुओं के साथ, चरामि = विचरण करती हूँ, अहम् = मैं, आदित्यैः = आदित्यों के साथ, उत = और, विश्वदेवैः = विश्वेदेवों के साथ, अहम् = मैं, मित्रावरुणा = मित्र और वरुण को, उभा = दोनों को, बिभर्मि = धारण करती हूँ, अहम् = मैं, इन्द्राग्नी = इन्द्र और अग्नि को, अहम् = मैं, अश्विना = अश्विनीकुमारों को, उभा = दोनों को।

अनुवाद – मैं रुद्रों और वसुओं के साथ विचरण करती हूँ, मैं आदित्यों और विश्वदेवों के साथ विचरण करती हूँ, मैं मित्र और वरुण को, इन्द्र और अग्नि को तथा दोनों अश्विनीकुमारों को (धारण करती हूँ)।

व्याकरण – मित्रावरुणा = मित्रं च वरुणं च, सुपां सुलुगिति द्वितीयाया आकारः।

विशेष – माया के आधार से ब्रह्म प्रभृति सभी की उत्पत्ति होती है।

अहं सोममाहनसं बिभर्म्यहं त्वष्टारमुत पूषणं भगम्।
अहं दधामि द्रविणं हविष्मतेसुप्राव्ये यजमानाय सुन्वते।।2।।

अन्वय – अहम् आहनसं सोमं बिभर्मि, अहं त्वष्टारम् उत पूषणं भगम् (बिभर्मि), अहं द्रविणं हविष्मते सुप्राव्ये सुन्वते यजमानाय द्रविणं दधामि।

शब्दार्थ – अहम् = मैं, सोमम् = सोम को, आहनसम् = अभिषव किये जाने वाले/शत्रुओं को नष्ट करने वाले, बिभर्मि = धारण करती हूँ, अहम् = मैं, त्वष्टारम् = त्वष्टा को, उत = और, पूषणम् = पूषा को, भगम् = भग को, अहम् = मैं, दधामि = धारण करती हूँ, द्रविणम् = धन को, हविष्मते = हवि से युक्त, सुप्राव्ये = शोभन हवि को देवताओं तक पहुंचाने वाले, सुन्वते = सोमाभिषव करने वाले, यजमानाय = यजमान के लिये।

अनुवाद – मैं (यज्ञ में) अभिषव किये जाने वाले सोम को धारण करती हूँ, मैं त्वष्टा, पूषा और भग को (धारण करती हूँ)। मैं हविर्युक्त, शोभन हवि को (देवताओं तक) पहुँचाने वाले तथा सोमाभिषव करने वाले यजमान के लिये धन धारण करती हूँ।

व्याकरण – सुन्वते = षुञ् अभिषव के अर्थ में आत्मनेपद लट् लकार, प्रथम पुरुष, एकवचन।

विशेष – ऐश्वर्यस्य समग्रस्य धर्मस्य यशसः श्रियः, ज्ञानवैराग्ययोश्चैव षण्णां **भग** इतीरणा।

अहं राष्ट्री संगमनी वसूनां चिकितुषी प्रथमा यज्ञियानाम्।
तां मा देवा व्यदधुः पुरुत्रा भूरिस्थात्रां भूर्यावेशयन्तीम्।।3।।

वाक् (10.125), पुरुष (10.90), मरुत्(1.85), अभय (6.40)

अन्वय – अहं राष्ट्री, वसूनां संगमनी, चिकितुषी, यज्ञियानां प्रथमा (अस्मि)। तां भूरिस्थात्रां भूरि आवेशयन्तीं मा देवाः पुरुत्रा वि अदधुः।

शब्दार्थ – अहम् = मैं, राष्ट्री = सम्पूर्ण जगत की शासिका, वसूनाम् = धनों को, संगमनी = प्राप्त कराने वाली, चिकितुषी = जानने वाली, प्रथमा = सर्वप्रथम, यज्ञियानाम् = पूजनीय देवताओं में, ताम् = उस, मा = मुझको, देवाः = देवों ने, वि अदधुः = विभिन्न प्रकार से धारण किया है, पुरुत्रा = अनेक स्थानों पर, भूरिस्थात्राम् = अनेक रूपों में अवस्थित, भूरि = बहुतों में, आवेशयन्तीम् = प्रवेश करने वाली।

अनुवाद – मैं सम्पूर्ण जगत् की शासिका, धनों को प्राप्त कराने वाली, सबको जानने वाली तथा पूजनीयों में प्रमुख हूँ। अनेक रूपों में अवस्थित तथा बहुतों में प्रवेश करनेवाली उस मुझको देवों ने अनेक स्थानों पर विविध प्रकार से धारण किया है।

व्याकरण – **व्यदधुः** = वि उपसर्ग पूर्वक डुधाञ् धारणपोषणयोः धातु से लङ् लकार।

विशेष – आदि शक्ति द्वारा जगत् के धारण का उल्लेख है।

मया सो अन्नमत्ति यो विपश्यति यः प्राणिति य ईं शृणोत्युक्तम्।
अमन्तवो मां त उप क्षियन्ति श्रुधिश्रुत श्रद्धिवं ते वदामि।।4।।

अन्वय – यः विपश्यति, यः प्राणिति, यः ईम् उक्तं शृणोति सः मया अन्नम् अत्ति। अमन्तवः ते माम् उप क्षियन्ति। हे श्रुत, श्रुधि ते श्रद्धिवं वदामि।

शब्दार्थ – मया = मेरे द्वारा, सः = वह, अन्नम् = अन्न, अत्ति = खाता है, यः = जो, विपश्यति = देखता है, यः = जो, प्राणिति = साँस लेता है, यः = जो, ईम् = उसको, शृणोति = सुनता है, उक्तम् = कही गई बात को, अमन्तवः = न जानने वाले, ते = वे, माम् = मुझको, उप = समीप, क्षियन्ति = निवास करते हैं, श्रुधि = सुनो, श्रुत = हे सुनने वाले, श्रद्धिवम् = श्रद्धायुक्त, ते = तुम्हारे लिये, वदामि = कहती हूँ।

अनुवाद – जो देखता है, जो साँस लेता है, जो कही बात को सुनता है, वह मेरे द्वारा खाता है। (यद्यपि) इसको नहीं जानते हैं, (फिर भी) वे मेरे पास निवास करते हैं। हे सुनने वाले, सुनो, तुम्हारे लिये श्रद्धा के योग्य (बात) कहती हूँ।

व्याकरण – **विपश्यति** = वि उपसर्ग पूर्वक प्रेक्षणार्थ दृश् धातु लट् लकार, प्रथम पुरुष, एकवचन।

विशेष – देवी के माहात्म्य का वर्णन किया गया है।

अहमेव स्वयमिदं वदामि जुष्टं देवेभिरुत मानुषेभिः।
यं कामये तं तमुग्रं कृणोमि तं ब्रह्माणं तमृषिं तं सुमेधाम्।।5।।

अन्वय – अहम् एव स्वयं देवेभिः उत मानुषेभिः जुष्टम् इदं वदामि। यं कामये तं तम् उग्रं कृणोमि, तं ब्रह्माणं, तम् ऋषिं, तं सुमेधाम् (कृणोमि)।

शब्दार्थ – अहम् = मैं, एव = ही, स्वयम् = स्वयं, इदम् = इस बात को, वदामि = कहती हूँ, जुष्टम् = प्रिय/अभीष्ट, देवेभिः = देवताओं द्वारा, उत = और, मानुषेभिः = मनुष्यों द्वारा, यत् = जिसको, कामये = चाहती हूँ, तं तम् = उस उसको, उग्रं = प्रचण्ड, कृणोमि = करती हूँ, तम् = उसको, ब्रह्माणम् = सबसे बड़ा, तम् = उसको, ऋषिम् = मन्त्र द्रष्टा, तम् = उसको, सुमेधाम् =सुन्दर प्रज्ञा वाला।

अनुवाद – मैं स्वयं ही देवताओं तथा मनुष्यों द्वारा अभीष्ट इस (बात) को कहती हूँ। जिसको चाहती हूँ, उस-उसको प्रचण्ड बनाती हूँ, उसको ब्रह्मा (बनाती हूँ), उसको मन्त्रद्रष्टा (बनाती हूँ), उसको सुन्दर प्रज्ञावाला (बनाती हूँ)।

व्याकरण – जुष्टम् = प्रीति एवं सेवनार्थ जुष् धातु से क्त प्रत्यय।

विशेष – देवी द्वारा सृष्टि प्रपंच का निर्देश प्राप्त होता है।

अहं रुद्राय धनुरा तनोमि ब्रह्मद्विषे शरवे हन्तवा उ।
अहं जनाय समदं कृणोम्यहं द्यावापृथिवी आ विवेश।।6।।

अन्वय – अहं ब्रह्मद्विषे हन्तवै रुद्राय शरवे धनुः आ तनोमि। अहं जनाय समदं कृणोमि, अहं द्यावापृथिवी आ विवेश।

शब्दार्थ – अहम् = मैं, रुद्राय = रुद्र के लिये, धनुः = धनुष, आतनोमि = विस्तारित करती हूँ, ब्रह्मद्विषे = स्तुतियों से द्वेष करने वाले के लिये, शरवे = बाण के लिये, हन्तवै = मारने के लिये, उ = निपात, अहम् = मैं, जनाय = स्तोतृजन के लिये, समदम् = युद्ध, कृणोमि = करती हूँ, अहम् = मैं, द्यावापृथिवी = आकाश से लेकर पृथिवी तक सर्वत्र, आ विवेश = प्रविष्ट अर्थात् व्याप्त हूँ।

अनुवाद – स्तुतियों से द्वेष करने वाले को मारने के लिये मैं रुद्र के बाण के लिये उसके धनुष को विस्तारित करती हूँ। मैं (अपने) स्तोतृ जन के लिये संग्राम करती हूँ, मैं आकाश से लेकर पृथिवीपर्यन्त सर्वत्र व्याप्त हूँ।

व्याकरण – समदम् = समानं माद्यन्त्यस्मिन् इति समत् संग्रामः।

विशेष – सृष्टि में लोककल्याणार्थ भगवती के व्यापार का उल्लेख है।

अहं सुवे पितरमस्य मूर्धन् मम योनिरप्स्वन्तः समुद्रे।
ततो वि तिष्ठे भुवनानु विश्वोतामूं द्यां वर्ष्मणोप स्पृशामि।।7।।

अन्वय – अहं पितरं अस्य मूर्धन् सुवे। मम योनिः समुद्रे अप्सु अन्तः। ततः अनु विश्वा भुवना वि तिष्ठे, उत अमूं द्यां वर्ष्मणा उप स्पृशामि।

शब्दार्थ – अहम् = मैं, सुवे = उत्पन्न करती हूँ, पितरम् = पिता द्युलोक को, अस्य = उस परमात्मा के, मूर्धन् = शिर के ऊपर, मम = मेरा, योनिः = मूल स्थान, अन्तः = अन्दर, समुद्रे = समुद्र में, अप्सु = जलों में, ततः = वहीं से, वि तिष्ठे = विविध रूप से स्थित होती हूँ, विश्वा = सम्पूर्ण, भुवना = लोकों को, अनु = क्रमशः, उत = और, अस्य = उस, द्याम् = द्युलोक को, वर्ष्मणा = शिर/शरीर से, उपस्पृशामि = स्पर्श करती हूँ/व्याप्त करती हूँ।

अनुवाद – इस लोक के शिर पर पिता (द्युलोक) को उत्पन्न करती हूँ। मेरा मूल स्थान समुद्र में जल के अन्दर है। वहीं से सम्पूर्ण लोकों को व्याप्त कर स्थित होती हूँ और उस द्युलोक का (अपने) शिर से स्पर्श करती हूँ।

व्याकरण – सुवे = षुञ् अभिषवार्थक धातु से आत्मनेपद लट् लकार उत्तम पुरुष, एकवचन।

विशेष – देवी के द्वारा सृष्टिप्रक्रिया सम्पादन का उल्लेख किया गया है।

अहमेव वात इव प्र वाम्यारभमाणा भुवनानि विश्वा।
परो दिवा पर एना पृथिव्यैतावती महिना सं बभूव।।8।।

वाक् (10.125), पुरुष (10.90), मरुत्(1.85), अभय (6.40)

अन्वय – अहं विश्वा भुवनानि आरभमाणा वातः इव प्रवामि। दिवः परः एना पृथिव्या परः एतावती महिमा संबभूव।

शब्दार्थ – अहम् = मैं, एव = ही, वातः इव = वायु के समान, प्रवामि = प्रवाहित होती हूँ, आरभमाणा = ग्रहण करती हुई, भुवनानि = लोकों को, विश्वा = सम्पूर्ण, परः = परे, दिवा = द्युलोक के, परः = परे, एना = इस, पृथिव्या = पृथिवी के, एतावती = इतनी, महिना = महिमा से, संबभूव = हुई हूँ।

अनुवाद – सम्पूर्ण लोकों को ग्रहण करती हुई मैं ही वायु के समान सर्वत्र विचरण करती हूँ। द्युलोक से परे तथा इस पृथिवी से परे इतनी (विशाल अपनी) महिमा से हुई हूँ।

व्याकरण – **महिना** = महिमन् शब्द के तृतीया एकवचन का रूप लौकिक संस्कृत में महिम्ना बनता है।

विशेष – वाणी की सर्वव्यापकता का उल्लेख प्राप्त होता है।

11.3 पुरुष (ऋग्वेद 10.90)

ऋषि – नारायण, देवता –पुरुष।

सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात्।
स भूमिं विश्वतो वृत्वात्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम्।।1।।

अन्वय – पुरुषः सहस्रशीर्षा सहस्राक्षः सहस्रपात्। स भूमिं विश्वतः वृत्वा दशाङ्गुलम् अति अतिष्ठत्।

शब्दार्थ – सहस्रशीर्षा = हजारों सिर वाला, पुरुषः = परम पुरुष, सहस्राक्षः = हजारों नेत्र वाला, सहस्रपात् = हजारों पैर वाला, सः = वह, भूमिम् = पृथिवी को, विश्वतः = चारों तरफ से, वृत्वा = व्याप्त करके, अति = अधिक, अतिष्ठत् = स्थित है, दशाङ्गुलम् = दश अंगुल परिमाण में।

अनुवाद – पूर्णपुरुष हजारों सिर वाला, हजारों नेत्र वाला तथा हजारों पैर वाला है। वह पृथिवी को चारों तरफ से व्याप्त करके दश अंगुल (परिमाण में) स्थित रहता है।

व्याकरण – **अतिष्ठत्** = गतिनिवृतौ **स्था** धातु से लङ् लकार, प्रथम पुरुष, एकवचन।

विशेष – **दशाङ्गुलम्** = यह उपलक्षण है वस्तुतः जो कोई भी वस्तु ब्रह्माण्ड में है, उससे परिमाण में पुरुष दश अङ्गुल अधिक है। **सहस्र** = मन्त्र में एकाधिक बार प्राप्त पद अनन्त का वाचक है।

पुरुष एवेदं सर्वं यद्भूतं यच्च भव्यम्।
उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहति।।2।।

अन्वय – इदं सर्वं यत् भूतं यत् च भव्यं (तत्) पुरुषः एव। (सः) अमृतत्वस्य ईशानः उत यत् अन्नेन अतिरोहति (तस्यापि)।

शब्दार्थ – पुरुषः = परम पुरुष, एव = ही, इदम् = यह, सर्वम् = सम्पूर्ण, यत् = जो, भूतम् = हो गया है, यत् = जो, च = और, भव्यम् = होने वाला है, उत = और, अमृतत्वस्य = अमरत्व का, ईशानः = स्वामी, यत् = जो, अन्न = अन्न से, अतिरोहति = समृद्ध होता है।

अनुवाद – यह सब, जो हो गया है तथा जो होगा, पुरुष ही है और यह अमरत्व का स्वामी है तथा जो अन्न से समृद्ध होता है (उनका भी)।

व्याकरण – **ईशानः** = ईश् ऐश्वर्यार्थक से शानच्।

विशेष – इस जगत् में जो कोई प्राणी है, वह अन्न से ही पुष्ट होता है अतः उसे अन्नाद कहा जाता है।

एतावानस्य महिमातो ज्यायांश्च पूरुषः।
पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि।।3।।

अन्वय – एतावान् अस्य महिमा, अतः ज्यायान् च पुरुषः। अस्य पादः विश्वा भूतानि, अस्य त्रिपात् अमृतं दिवि।

शब्दार्थ – एतावान् = इतनी, अस्य = इसकी, महिमा = ऐश्वर्य, अतः = उससे भी, ज्यायान् = बढ़कर, च = और, पुरुषः = परम पुरुष, पादः = एक चौथाई अंश, अस्य = उसका, विश्वा = सम्पूर्ण, भूतानि = प्राणी, त्रिपात् = तीन चतुर्थांश, अस्य = उसका, अमृतम् = अमर लोक, दिवि = द्युलोक में।

अनुवाद – इतनी उसकी महिमा है और उससे भी बड़ा पुरुष है। उसके चतुर्थांश में सम्पूर्ण लोक है, इसका तीन चतुर्थांश, जो अमर लोक है, वह द्युलोक में है।

व्याकरण – **ज्यायान्** = वृद्ध एवं प्रशस्य पद का ईयसुन् तथा इष्ठन् प्रत्यय के योग से ज्या आदेश हो जाता है।

विशेष – **पूरुषः** = पुरुष पद के प्रथम वर्ण का दीर्घ रूप भी वेद में प्राप्त होता है।

त्रिपादूर्ध्व उदैत्पुरुषः पादोऽस्येहाभवत् पुनः।
ततो विष्वङ्व्यक्रामत् साशनानशने अभि।।4।।

अन्वय – त्रिपात् पुरुष ऊर्ध्वः उद् ऐत्, अस्य पादः पुनः इह अभवत्। ततः विष्वङ् साशनानशने अभि वि अक्रामत्।

शब्दार्थ – इह = यहाँ, अभवत् = रह गया, पुनः = फिर, ततः = इससे, विष्वङ् = चारों तरफ, वि अक्रामत् = फैलाया, साशनानशने = जीव तथा निर्जीव, अभि = तरफ।

अनुवाद – तीन-चतुर्थांश के साथ पुरष ऊपर चला गया, फिर भी एक चतुर्थांश यहीं पर रह गया। इससे यह अपने को जीव तथा निर्जीव सभी रूपों में चारों तरफ फैलाया।

व्याकरण – **अक्रामत्** = पादविक्षेपार्थ में क्रम धातु से लङ् लकार, प्रथम पुरुष, एकवचन।

वाक् (10.125), पुरुष (10.90), मरुत्(1.85), अभय (6.40)

विशेष – साशनानशने = द्वन्द्व समास, पदान्तीय एकार द्विवचनान्त होने के कारण प्रगृह्य संज्ञक है, अतः पदपाठ में इतिकरण हुआ है। द्वन्द्व समास में पदों के मध्य पदपाठ में अवग्रह नहीं आता है।

तस्माद्विराडजायत विराजो अधि पूरुषः।
स जातो अत्यरिच्यत पश्चाद्भूमिमथो पुरः।।5।।

अन्वय – तस्मात् विराड् अजायत, विराजः अधि पुरुषः (अजायत)। सः जातः (एव) अति अरिच्यत, पश्चात् भूमिम् अथो पुरः (ससर्ज)।

शब्दार्थ – तस्मात् = उस चतुर्थांश से, विराट् = परम पुरुष से उत्पन्न प्रथम तत्त्व, अजायत = उत्पन्न हुआ, विराजः = विराट् नामक प्रथम तत्त्व से, अधि = बाद में, पुरुषः = जीवात्मा के रूप में पुरुष, सः = वह, जातः = उत्पन्न होते ही, अति अरिच्यत = (देव मनुष्य आदि रूप में विराट् से) अलग कर दिया, पश्चात् = इसके बाद, भूमिम् = पृथिवी, अथो = इसके बाद, पुरः = जीवात्मा के लिए शरीर।

अनुवाद – उस (चतुर्थांश) से विराट् उत्पन्न हुआ, विराट् से (जीवात्मा के रूप में) पुरुष (उत्पन्न हुआ) उत्पन्न होते ही उसने (अपने को देव मनुष्य आदि रूप में विराट् से) अलग कर दिया। इसके बाद पृथिवी को (उत्पन्न किया), इसके बाद (जीवात्मा के लिए) शरीर (का निर्माण किया)।

व्याकरण – अरिच्यत = रिच् धातु वियोजन एवं सम्पर्कार्थ में कर्मवाच्य के अन्तर्गत आत्मनेपद, लङ् लकार, प्रथम पुरुष, एकवचन में प्रयुक्त।

विशेष – विराट्= सृष्टिप्रक्रिया की उस अवस्था का सूचक है जब स्त्री-पुरुष दोनों तत्त्व मिश्रित थे।

यत्पुरुषेण हविषा देवा यज्ञमतन्वत।
वसन्तो अस्यासीदाज्यं ग्रीष्म इध्मः शरद्धविः।।6।।

अन्वय – देवा यत् पुरुषेण हविषा यज्ञम् अतन्वत। अस्य (यज्ञस्य) आज्यं वसन्तः आसीत्, इध्मः ग्रीष्मः (आसीत्), हविः (च) शरद् (आसीत्)।

शब्दार्थ –यत् = जब, पुरुषेण = पुरुषरूप, हविषा = हवि से, देवाः = देवताओं ने, यज्ञम् = यज्ञ को, अतन्वत = सम्पन्न किया, वसन्तः = वसन्त ऋतु, अस्य = उसका, आसीत् = था, आज्यम् = घी, ग्रीष्मः = ग्रीष्म ऋतु, इध्मः = इन्धन, शरत् = शरद् ऋतु, हविः = हवि।

अनुवाद – देवताओं ने जब पुरुषरूपी हवि से यज्ञ किया, (उस समय) वसन्त इस (यज्ञ) का घी था, ग्रीष्म इसका इन्धन था, शरद् इसका हवि था।

व्याकरण – अतन्वत = विस्तार अर्थ में तनु धातु आत्मनेपद, लङ् लकार, प्रथम पुरुष, एकवचन।

विशेष – यज्ञम् = यह पद मन्त्र में सृष्टि यज्ञ के क्रम में प्रयुक्त है।

तं यज्ञं बर्हिषि प्रौक्षन् पुरुषं जातमग्रतः।
तेन देवा अयजन्त साध्या ऋषयश्च ये।।7।।

अन्वय – तम् अग्रतः जातं यज्ञं पुरुषं (देवाः) बर्हिषि प्र औक्षन्। देवाः साध्याः ये ऋषयश्च आसन् (ते सर्वे) तेन (पुरुषेण) अयजन्त।

शब्दार्थ – तम् = उस, यज्ञम् = बलि दिये जाने वाले को, बर्हिषि = कुशा पर, प्र औक्षन् = जल से अभिषेक कराया, पुरुषम् = पुरुष को, जातम् = उत्पन्न, अग्रतः = सर्वप्रथम, तेन = उससे, देवाः = देवताओं ने, अयजन्त = यज्ञ किया, साध्याः = प्रजापति आदि सृष्टि कर्त्ताओं ने, ऋषयः = ऋषियों ने, च = और, ये = जो।

अनुवाद – उस सबसे पहले उत्पन्न बलि दिये जाने वाले पुरुष (पशु) को देवताओं ने पवित्र कुशा पर (रखकर) प्रोक्षण किया। उस (पुरुष पशु) से देवताओं ने, प्रजापति आदि सृष्टिकर्ताओं ने तथा जो ऋषि थे उन्होंने यज्ञ किया।

व्याकरण – **बर्हिषि** = बर्हिष् प्रातिपदिकहलन्त नपुंसकलिंग, सप्तमी एकवचन।

विशेष – प्रकृत मन्त्र में पुरुष का ही कुशाओं के ऊपर प्रोक्षण करके उसे हविः रूप में समर्पित करने का उल्लेख है।

तस्माद्यज्ञात्सर्वहुतः सम्भृतं पृषदाज्यम्।
पशूँस्ताँश्चक्रे वायव्यानारण्यान्ग्राम्याश्च ये।।8।।

अन्वय – तस्मात् सर्वहुतः यज्ञात् पृषदाज्यं संभृतम्। (तस्मात् संभृतात् पृषदाज्यात्) वायव्यान् आरण्यान् पशून् ये च ग्राम्याः तान् चक्रे।

शब्दार्थ – तस्मात् = उस, यज्ञात् = यज्ञ से, सर्वहुतः = उस यज्ञ से जिसमें सर्वरूपात्मक पुरुष का हवन हुआ था, संभृतम् = इकट्ठा किया गया, पृषदाज्यम् = दधिमिश्रित घृत, पशून् = पशुओं को, तान् = उन, चक्रे = उत्पन्न किया, वायव्यान् = आकाश में रहने वाले, आरण्यान् = जंगल में रहने वाले, ग्राम्याः = ग्रामों में रहने वाले, च = और, ये = जो थे।

अनुवाद – उस यज्ञ से जिसमें सर्वरूपात्मक पुरुष का हवन हुआ था, दधिमिश्रित घृत इकट्ठा किया गया। (उससे एकत्रित दधिमिश्रित घृत से उस पुरुष ने) आकाश में रहने वाले, जंगल में रहने वाले तथा ग्रामों में रहने वाले जो पशु थे उनको उत्पन्न किया।

व्याकरण – **चक्रे** = कृ करणे, आत्मनेपद, लिट् लकार, प्रथम पुरुष, एकवचन।

विशेष – **पृषदाज्यम्** = सृष्टियज्ञ में दधि और आज्य के संयोग से बनता है।

तस्माद्यज्ञात्सर्वहुत ऋचः सामानि जज्ञिरे।
छन्दांसि जज्ञिरे तस्माद् युजुस्तस्मादजायत।।9।।

अन्वय – तस्मात् सर्वहुतः यज्ञात् ऋचः सामानि (च) जज्ञिरे, तस्मात् छन्दांसि जज्ञिरे, तस्मात् यजुः अजायत।

शब्दार्थ – तस्मात् = उस, यज्ञात् = यज्ञ से, सर्वहुतः = उस यज्ञ में जिसमें सर्वरूपात्मक पुरुष का हवन हुआ था, ऋचः = ऋचायें, सामानि = साम, छन्दांसि = गायत्र्यादि छन्द, जज्ञिरे = उत्पन्न हुये, तस्मात् = उससे, यजुः = यजुष्, तस्मात् = उससे, अजायत = उत्पन्न हुये।

वाक् (10.125), पुरुष (10.90), मरुत्(1.85), अभय (6.40)

अनुवाद – उस सर्वहुत् यज्ञ से ऋचायें तथा साम उत्पन्न हुये, उससे (गायत्र्यादि) छन्द उत्पन्न हुये, उससे यजुष् उत्पन्न हुआ।

व्याकरण – **जज्ञिरे** = यज् धातु, लिट् लकार, प्रथम पुरुष, बहुवचन।

विशेष – यहाँ ऋक् का अर्थ मूर्तिमान् आकार, यजुष् का अर्थ गतिमान्, साम का अर्थ आकार की सीमा तथा छन्दांसि का अर्थ सृष्टि का प्रत्येक पदार्थ है।

तस्मादश्वा अजायन्त ये केचोभयादतः।
गावो ह जज्ञिरे तस्मात्तस्माज्जाता अजावयः।।10।।

अन्वय – तस्मात् अश्वाः ये के च उभयादतः अजायन्त, तस्मात् ह गावः जज्ञिरे, तस्मात् अजावयः जाताः।

शब्दार्थ – तस्मात् = उस सर्वहुत् यज्ञ से, अश्वाः = घोड़े, अजायन्त = उत्पन्न हुये, ये = जो, के = कोई, च = और, उभयादतः = दोनों तरफ दांत वाले, गावः = गायें, ह = निश्चित अर्थ का वाचक निपात, जज्ञिरे = उत्पन्न हुई, तस्मात् = उससे, जाताः = उत्पन्न हुई, अजावयः = बकरियाँ तथा भेड़ें।

अनुवाद – उस (सर्वहुत् यज्ञ) से अश्व उत्पन्न हुये तथा वे सभी जो दोनों तरफ दांतवाले हैं। उससे गायें उत्पन्न हुईं, उससे बकरियाँ तथा भेड़ें (पैदा हुईं)।

व्याकरण – **अजायन्त** = प्रादुर्भावार्थ जन् धातु से आत्मनेपद, प्रथम पुरुष, बहुवचन।

विशेष – प्रकृत मन्त्र में अर्थवाद के माध्यम से विषय की प्रस्तुति की गई है।

यत्पुरुषं व्यदधुः कतिधा व्यकल्पयन्।
मुखं किमस्य कौ बाहू का ऊरू पादा उच्येते।।11।।

अन्वय – (देवाः) यत् पुरुषं वि अदधुः कतिधा वि अकल्पयन्? अस्य मुखं किम्? कौ बाहू? का ऊरू? (कौ) पादौ उच्यते?

शब्दार्थ – यत् = जब, पुरुषम् = परम पुरुष को, वि अदधुः = विभक्त किया, कतिधा = कितने भागों में, वि अकल्पयन् = विभाजन किया, मुखम् = मुख, किम् = क्या था, अस्य = उसका, कौ = कौन, बाहू = दो भुजायें थीं, कौ = कौन, ऊरू = दोनों जंघायें, पादौ = दोनों पैर, उच्येते = कहे जाते हैं।

अनुवाद – जब (देवताओं ने) पुरुष को विभक्त किया (उस समय उसके) कितने भाग किये? उसका मुख क्या था? (उसकी) दोनों भुजायें क्या थीं? (उसकी) दोनों जंघायें क्या थीं? (उसके) दोनों पैर क्या कहे जाते हैं?

व्याकरण – **व्यदधुः** = वि उपसर्ग धारणार्थ धा धातु से लङ् लकार, प्रथम पुरुष, बहुवचन।

विशेष – **ऊरू**= ऊकार, द्विवचनान्त होने से प्रगृह्य संज्ञक है, अतएव पदपाठ में इतिकरण।

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्यः कृतः।
ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत।।12।।

अन्वय – अस्य मुखं ब्राह्मणः आसीत्, राजन्यः बाहू कृतः, यत् वैश्यः तत् अस्य ऊरू, शूद्रः पद्भ्याम् अजायत।

शब्दार्थ – ब्राह्मणः = ब्राह्मण, अस्य = उसका, मुखम् = मुख, आसीत् = था, बाहू = दोनों भुजाओं से, राजन्यः = क्षत्रिय, कृतः = बना, ऊरू = दोनो जंघायें, तत् = उनसे, उसकी, यत् = जो थीं, वैश्यः = वैश्य, पद्भ्याम् = दोनों पैरों से, शूद्रः = शूद्र, अजायत = उत्पन्न हुआ।

अनुवाद – ब्राह्मण उसका मुख था, दोनों भुजाओं से क्षत्रिय हुआ, उसकी जो जंघाये थीं उनसे वैश्य हुआ, (उसके) दोनों पैरों से शूद्र उत्पन्न हुआ।

व्याकरण – राजन्यः = क्षत्रिय जाति विशिष्ट।

विशेष – स मुखतस्त्रिवृतं निरमिमीत मुखादि से ब्राह्मणादि का सन्दर्भ तैत्तिरीय संहिता (7.1.1.4) में भी प्राप्त होता है।

चन्द्रमा मनसो जातश्चक्षोः सूर्यो अजायत।
मुखादिन्द्रश्चाग्निश्च प्राणाद्वायुरजायत।।13।।

अन्वय – मनसः चन्द्रमा जातः, चक्षोः सूर्यः अजायत, मुखादिन्द्रश्च अग्निश्च प्राणाद् वायुः अजायत।

शब्दार्थ – चन्द्रमाः = चन्द्रमा, मनसः = मन से, जातः = उत्पन्न हुआ, चक्षोः = आँख से, सूर्यः = सूर्य, अजायत = उत्पन्न हुआ, मुखात् = मुख से, इन्द्रः = इन्द्र, च = और, अग्निः = अग्नि, च = और, प्राणात् = प्राण से, वायुः = हवा, अजायत = उत्पन्न हुआ।

अनुवाद – (उस पुरुष के) मन से चन्द्रमा उत्पन्न हुआ, (उसकी) आँख से सूर्य उत्पन्न हुआ। (उसके) मुख से इन्द्र और अग्नि (उत्पन्न हुये), (उसकी) श्वास से वायु उत्पन्न हुआ।

व्याकरण – चन्द्रमाः = चन्द्रमस् शब्द हलन्त पुंल्लिंग प्रथमा विभक्ति एकवचन।

विशेष – प्रजापति के मन से चन्द्रमा की सृष्टि का उल्लेख प्राप्त होता है।

नाभ्या आसीदन्तरिक्षं शीर्ष्णो द्यौः समवर्तत।
पद्भ्यां भूमिर्दिशः श्रोत्रात्तथा लोकाँ अकल्पयन्।।14।।

अन्वय – नाभ्याः अन्तरिक्षम् आसीत्, शीर्ष्णः द्यौः सम् अवर्तत, पद्भ्यां भूमिः, श्रोत्रात् दिशः तथा लोकान् अकल्पयन्।

शब्दार्थ – नाभ्याः = नाभि से, आसीत् = उत्पन्न हुआ था, अन्तरिक्षम् = अन्तरिक्षलोक, शीर्ष्णः = शिर से, द्यौः = द्युलोक, समवर्तत = उत्पन्न हुआ, पद्भ्याम् = दोनों पैरों से, भूमिः = पृथिवी, दिशः = दिशायें, श्रोत्रात् = कान से, लोकान् =लोकों की, अकल्पयन् = सृष्टि की।

अनुवाद – (उसकी) नाभि से अन्तरिक्ष (उत्पन्न हुआ) था, शिर से आकाश उत्पन्न हुआ, दोनों पैरों से पृथिवी, कान से दिशायें। इसी प्रकार सभी लोकों की सृष्टि (देवताओं ने) की।

व्याकरण – **दिशः** = दिक् शब्द हलन्त स्त्रीलिंग, प्रथमा विभक्ति, बहुवचन।

विशेष – सम्पूर्ण लोक सर्वहुत् विराट् पुरुष का ही रूप है।

सप्तास्यासन् परिधयस्त्रिः सप्त समिधः कृताः।
देवा यद्यज्ञं तन्वाना अबध्नन् पुरुषं पशुम्।।15।।

अन्वय – अस्य (यज्ञस्य) सप्त परिधयः आसन्, त्रिः सप्त समिधः कृताः, यत् यज्ञं तन्वानाः देवाः पुरुषं पशुम् अबध्नन्।

शब्दार्थ – सप्त = सात, अस्य = उसकी, आसन् = थीं, परिधयः = परिधियाँ, त्रिः सप्त = इक्कीस, समिधः = समिधायें, कृताः = बनाई गईं थीं, देवाः = देवताओं ने, यत् = जिस समय, यज्ञम् = यज्ञ, तन्वानाः = सम्पन्न करते हुये, अबध्नन् = बांधा था, पुरुषम् = परम पुरुष को, पशुम् = पशु के रूप में।

अनुवाद – उसकी सात परिधियाँ थीं इक्कीस समिधायें बनाई गई थीं, जिस समय यज्ञ करते हुये देवताओं ने पुरुष पशु को बाँधा था।

व्याकरण – **अबध्नन्** = बध् धातु, लङ् लकार, प्रथम पुरुष, बहुवचन।

विशेष – संवत्सर के 12 महीने, 5 ऋतुयें, 3 लोक तथा 1 आदित्य ये ही यज्ञ की 21 समिधायें हैं।

यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास् तानि धर्माणि प्रथमान्यासन्।
ते ह नाकं महिमानः सचन्त यत्र पूर्वे साध्याः सन्ति देवाः।।16।।

अन्वय – देवाः यज्ञेन यज्ञम् अयजन्त। तानि प्रथमानि धर्माणि आसन्। ते ह महिमानः नाकं सचन्त यत्र पूर्वे साध्याः देवाः (च) सन्ति।

शब्दार्थ – यज्ञेन = यज्ञ से, यज्ञम् = यज्ञ पुरुष का, अयजन्त = पूजन किया, देवाः = देवताओं ने, तानि = वे ही, धर्माणि = धर्म, प्रथमानि = सर्वप्रथम, आसन् = थे, ते = उन लोगों ने, ह = निश्चित अर्थ का वाचक एक निपात, नाकम् = स्वर्ग, महिमानः = पूजने वाले, सचन्त = प्राप्त किये, यत्र = जहाँ पर, पूर्वे = पुराने, साध्याः = प्रजापति आदि सृष्टि कर्ताओं का वर्ग, सन्ति = वास करते है, देवाः = देवता।

अनुवाद – यज्ञ से देवताओं ने यज्ञपुरुष का पूजन किया, वे ही सर्वप्रथम धर्म थे। वे पूजने वाले स्वर्ग को प्राप्त किये जहाँ पर सृष्टि करने में समर्थ प्रजापति आदि पुराने देवताओं का वर्ग तथा देवगण वास करते हैं।

व्याकरण – **अयजन्त** = यज् धातु आत्मनेपद, लङ् लकार, प्रथम पुरुष, बहुवचन।

विशेष – प्रकृत मन्त्र की व्याख्या में आचार्य वाधूल ने **तानि धर्माणि** की व्याख्या में स्पष्ट किया कि ब्रह्माण्ड को धारण करने वाले आठ तत्त्व–पृथिवी, अन्तरिक्ष, द्युलोक तथा महः लोक तथा इन चार लोकों के अधिष्ठात्री देवता अग्नि, वायु, आदित्य और वरुण हैं। ये ही आठ मन्त्र में महिमानः कहे गये है।

11.4 मरुत्(ऋग्वेद 1.85)

ऋषि – गौतम, देवता – मरुत्।

प्र ये शुम्भन्ते जनयो न सप्तयो यामन्रुद्रस्यसूनवः सुदंससः।
रोदसी हि मरुतश्चक्रिरे वृधे मदन्ति वीरा विदथेषु घृष्वयः।।1।।

अन्वय – ये यामन् जनयो न शुम्भन्ते, (ते) सप्तयः, रुद्रस्य सूनवः सुदंससः (च सन्ति)। मरुतः रोदसी हि वृधे चक्रिरे, (ते) घृष्वयः वीराः विदथेषु मदन्ति।

शब्दार्थ – ये = जो मरुत् नाम के देवता, यामन् = गमन काल में, प्रशुम्भन्ते = अत्यधिक अपने अंगों को अलंकृत करते हैं स्त्रियों की तरह, ते = वे, सप्तयः = सर्पणशील, धावक, यामन् = गमन में निमित्तभूत, रुद्रस्य = रुद्र के, सूनवः = पुत्र, सुदंससः = शोभनकर्म वाले, सन्ति = हैं, मरुतः = मरुद्गण, रोदसी = द्यु और पृथिवी लोक जिससे प्रगत हो बढ़ें, वृष्टि आदि के द्वारा वैसा किया, ते = वे (क्षेपणशील तथा वीर हैं), घृष्वयः = वे घर्षणशील हैं, पर्वतादि के भंजक है, इस प्रकार, विदथेषु = यज्ञों में, मदन्ति = सोमपान करके प्रसन्न होते हैं।

अनुवाद – (ये) जो मरुद्गण बाहर जाने के लिए स्त्रीवत् अपने को प्रकृष्टरूप से शोभायुक्त कर लेते है, वे सर्पणशील/निष्ठावान् रुद्र के पुत्र तथा सुन्दर/विलक्षण कर्म वाले हैं। मरुतों ने स्वर्ग तथा पृथिवी को (वृष्टि के द्वारा) विस्तारार्थ निर्मित किया है, अतः वे घर्षणशील, ध्वंसक वीरगण हमारे यज्ञों में प्रफुल्लित होते हैं।

व्याकरण – **शुम्भन्ते** = दीप्त्यर्थक शुम्भ् धातु, लट् लकार, प्रथम पुरुष बहुवचन, **सप्तयः** = षप् समवाये, धातु से क्तिच् प्रत्यय सप्तिः प्रथमा बहुवचन में रूप होता है।

विशेष – वर्षाकारक मरुद्गणों के वैशिष्ट्य का वर्णन किया गया है।

त उक्षितासो महिमानमाशत दिवि रुद्रासो अधि चक्रिरे सदः।
अर्चन्तो अर्क जनयन्त इन्द्रियमधि श्रियो दधिरे पृश्निमातरः।।2।।

अन्वय – उक्षितासः ते महिमानम् आशत। रुद्रासः दिविसदः अधि चक्रिरे। अर्कम् अर्चन्तः इन्द्रियं जनयन्तः पृश्निमातरः श्रियः अधिदधिरे।

शब्दार्थ – उक्षितासः = देवताओं के द्वारा अभिषिक्त, ते = वे मरुद्गण, महिमानम् = महत्त्व को, आशत = प्राप्त किये, रुद्रासः = रुद्र के पुत्र, दिविसदः = द्युलोक में अपना स्थान बनाया, अधिचक्रिरे = सर्वोत्कृष्ट किया/श्रेष्ठ पद प्राप्त किया, अर्कम् = इन्द्र को, अर्चन्तः = पूजते हुए, इन्द्रियम् = इन्द्र के प्रभाव को पैदा करते हुए, पृश्निमातरः = नानारूपा भूमि, श्रियः = ऐश्वर्य को, अधिदधिरे = धारण करते हुए।

अनुवाद – (देवताओं के द्वारा) अभिषिक्त हो जाने पर मरुत महत्त्वशाली हो गये। रुद्र के पुत्रों ने प्रकाशयुक्त आकाश में अपना स्थान प्राप्त कर लिया। अर्चनीय इन्द्र की अर्चना करते हुए तथा इन्द्र की विशिष्ट शक्ति को उत्पन्न करते हुए पृश्नि (पृथ्वीमाता के इन पुत्रों ने अर्थात् मरुतों) ने ऐश्वर्यों को अधिकार के साथ धारण कर लिया है।

व्याकरण – **पृश्निमातरः** = पृश्नि नानारूपा भूमि, वह माता है जिसकी वे।

विशेष – मरुद्गणों के कर्म तथा प्रभाव का वर्णन किया गया है।

गोमातरो यच्छुभयन्ते अञ्जिभिस् तनूषु शुभ्रा दधिरे विरुक्मतः।
बाधन्ते विश्वमभिमातिनमप वर्त्मान्येषामनु रीयते घृतम्।।3।।

अन्वय – यद् गोमातरः अञ्जिभिः शुभयन्ते (तदा) शुभ्राः (मरुतः) तनूषु विरुक्मतो दधिरे। (मरुतः) विश्वम् अभिमातिनम् अप बाधन्ते। एषाम् वर्त्मानि अनु घृतं रीयते।

वाक् (10.125), पुरुष (10.90), मरुत्(1.85), अभय (6.40)

शब्दार्थ – यद् = जो, गोमातरः = गोरूपा भूमि माता है जिनकी वे मरुद्गण, अंजिभिः = रूपाभिव्यंजक आभरणों के द्वारा, शुभयन्ते = अपने अंगों को शोभायुक्त करते हैं, शुभ्राः = दीप्त, तनूषु = शरीरों में, विरुक्मन्तः = विशेष रूप से शोभायमान अलंकारों को, दधिरे = धारण करते हैं, मरुतः = मरुद्गण, विश्वं = सभी, अभिमातिनं = शत्रुओं को, अप बाधन्ते = मारते हैं, एषां = इन मरुतों के ,वर्त्मानि = मार्ग में, घृतम् = क्षरणशील जल घृत की तरह क्षरणशील वृष्टिजल, रीयते = स्रवित होता है।

अनुवाद – जिस समय गोरूप पृथ्वीमाता के ये पुत्ररूप को प्रकाशित करने वाले आभरणों से अपने को शोभायुक्त करते हैं, (उस समय) शोभायुक्त/दीप्तिमान् (ये मरुद्गण) अपने शरीरों पर विशेष रूप से चमकने वाले (आभरण/शस्त्रों को) धारण कर लेते हैं। वे सभी, प्रत्येक सामने आये हुए शत्रु को मार/भगा देते हैं। इन मरुतों के मार्गों पर पीछे-पीछे वृष्टिजल, घृतसम पुष्टिकर जल प्रवाहित होता है।

व्याकरण – **शुभयन्ते** = शुभ् धातु से णिच् प्रत्यय, लट् लकार, प्रथम पुरुष, बहुवचन, **अंजिभिः** = अञ्ज् धातु से इञ् प्रत्यय अंजिः, तृतीया विभक्ति, बहुवचन।

विशेष – मरुतों के सहयोग से वृष्टि होती है, इसका आलंकारिक चित्रण है।

वि ये भ्राजन्ते सुमखास ऋष्टिभिः प्रच्यावयन्तो अच्युता चिदोजसा।
मनोजुवो यन्मरुतो रथेष्वा वृषव्रातासः पृषतीरयुग्ध्वम्।।4।।

अन्वय – सुमखासः ये ऋष्टिभिः विभ्राजन्ते, (ते) अच्युता चित्, ओजसा प्रच्यावयन्तः (मरुतः सन्ति)। (हे) मरुतः, मनोजुवः वृषव्रातासः (सन्तः यूयम्) यत् रथेषु पृषतीः आ अयुग्ध्वम्।

शब्दार्थ – सुमखासः = शोभन यज्ञ वाले, ये = जो देवगण, ऋष्टिभिः = आयुध विशेष के द्वारा, विभ्राजन्ते = विशेष रूप से शोभायमान होते हैं, अच्युता = नष्ट करने में असमर्थ पर्वतादि, चित् = निपात, ओजसा = स्वकीय बल के द्वारा, प्रच्यावयन्तः = प्रेरक होते हैं, मनोजुवः = मन की तरह तीव्र गति वाले, वृषव्रातासः = वृष्टि कराने वाले, यत् रथेषु = जो रथों में, पृषतीः = श्वेत बिन्दुओं से युक्त, आ अयुग्ध्वम् = सामने से नियुक्त।

अनुवाद – उत्तम यज्ञों से युक्त, अच्छे वीर स्वरूप जो देवगण अपनी बर्छियों/विशिष्ट आयुधों के कारण विशेषतया दीप्त होते हैं, वे न हिलने वाले पदार्थों को (पर्वतादि) भी अपनी शक्ति से अच्छी तरह हिला देने वाले (मरुद्गण) हैं। हे मरुद्गण, मन के समान तीव्र गति वाले (होकर आप सभी) जब अपने रथों में श्वेत बिन्दुओं से युक्त हरिणियों को जोत लेते हैं (तभी पर्वतादि हिल उठते हैं)।

व्याकरण – **सुमखासः** = सुमुख प्रथमा बहुवचन का वैदिक रूप।

विशेष – मरुद्गणों की विशेषताओं का चित्रण किया गया है।

प्र यद्रथेषु पृषतीरयुग्ध्वं वाजे अद्रिं मरुतो रंहयन्तः।
उतारुषस्यवि ष्यन्ति धाराश्चर्मेवोदभिर्व्युन्दन्ति भूम।।5।।

अन्वय – (हे) मरुतः, यद् रथेषु पृषतीः प्र अयुग्ध्वम् (तथा) वाजे अद्रिं रंहयन्तः (भवथ) उत अरुषस्य धाराः विष्यन्ति, चर्म इव भूम उदभिः वि उन्दन्ति।

शब्दार्थ – मरुतः = मरुतों, यद् = जो, रथेषु = रथों में, पृषतीः = श्वेतबिन्दुयुक्ता मृगी, अयुग्ध्वम् = योजित किये, वाजे = अन्न में, अद्रिं = मेघ को, रंहयन्तः = वर्षा हेतु प्रेरित करते हुए, अरुषस्य = सूर्य की, धाराः = धारा, विष्यन्ति = विमुक्त करते हैं, चर्म इव भूम = चर्म के समान आर्द्र भूमि, उदभिः = जल के द्वारा, व्युन्दन्ति = विशेष रूप से गीला करते हैं।

अनुवाद – हे मरुद् गण, जिस समय अपने रथों में श्वेत बिन्दुओं से युक्त हिरणियों को आप सब अच्छी तरह जोत लेते हैं तथा अन्नप्राप्त्यर्थ/युद्ध में मेघ को, इन्द्र के वज्र को प्रेरित करते हुये, गति प्रदान करते हुये (अवस्थित रहते हैं) उसी समय सूर्य/विद्युत् के पास से, अरुण वर्ण के अश्व की धाराएं बरसने लगती हैं और (वे धाराएं) गीले चर्म के समान जल से सारी पृथ्वी को आर्द्र कर देती है।

व्याकरण – **उन्दन्ति** = लट् लकार, प्रथम पुरुष बहुवचन।

विशेष – वर्षा में मरुतों के कर्मसाहचर्य का वर्णन किया गया है।

आ वो वहन्तु सप्तयो रघुष्यदो रघुपत्वानः प्र जिगात बाहुभिः।
सीदता बर्हिरुरु वः सदस्कृतं मादयध्वं मरुतो मध्वो अन्धसः।।6।।

अन्वय – (हे) मरुतः, रघुष्यदः सप्तयः वः आवहन्तु। रघुपत्वानः (यूयं) बाहुभिः प्रजिगात। बर्हिः आसीदत, वः उरुसदः कृतम्। मध्वः अन्धसः मादयध्वम्।

शब्दार्थ – हे मरुतः = हे मरुद्गण, रघुष्यदः = वेगपूर्वक जाते हुए, सप्तयः = सर्पणशील, वः = तुम सबको, आवहन्तु = बुलावे, रघुपत्वानः = शीघ्रतापूर्वक जाते हुए, बाहुभिः = आपके बाहुओं द्वारा, प्रजिगात = प्रकर्षपूर्वक जायें, बर्हिः = कुशासन, आसीदत = बैठे, वः = तुम सब, उरुसदः = विस्तीर्ण उपवेशन स्थान (वेदि), कृतम् = बनाया/किया, मध्वः = मधुर, अन्धसः मादयध्वम् = सोमपान तृप्त करें।

अनुवाद – हे मरुतों, तीव्रगति से चलने वाले घोड़े आप लोगों को यहाँ यज्ञ में प्राप्त करावे। बहुत शीघ्रता से चलने वाले (आप सब) अपनी भुजाओं के द्वारा हाथों में (हमारे लिए प्रदेय धन को लेकर) शीघ्रता से चलिये। इस कुशासन पर आप लोग बैठ जाइये, आपके लिये बहुत विशाल आसन/स्थान/वेदि निर्मित है। मधुर सोमरस (के पान) से आनन्दित होवें।

व्याकरण – **रघुष्यदः** = रघु लघु स्यन्दन अर्थ में, **जिगात** = गा धातु से लोट् लकार में मध्यम पुरुष, एकवचन।

विशेष – मरुद्गणों के यज्ञस्थल पर आने का उल्लेख प्राप्त होता है।

तेऽवर्धन्त स्वतवसो महित्वना नाकं तस्थुरुरु चक्रिरे सदः।
विष्णुर्यद्धावृद् वृषणं मदच्युतं वयो न सीदन्नधि बर्हिषि प्रिये।।7।।

अन्वय – स्वतवसः ते (मरुतः) अवर्धन्त, महित्वना नाकम् आ तस्थुः, उरु सदः (च) चक्रिरे। यद् वृषणं मदच्युतम् (इन्द्रम्) विष्णुः ह आवत्, (तदा मरुतः) वयः न प्रिये बर्हिषि अधि सीदन्।

शब्दार्थ – स्वतवसः = केवल अपने ही बल पर आश्रित, ते = वे, अवर्धन्त = बढ़ गये, महित्वना = स्वकीय महत्त्व से, नाकं = स्वर्ग, आतस्थुः = प्राप्त किया, उरू सदः = विस्तीर्ण आसन, चक्रिरे = बनाया, यद् = जो, वृषणम् = कामाभिवर्षक, मदच्युतम् =

हर्ष के वर्द्धक यज्ञ को, विष्णुः = विष्णु देवता, ह आवत् = रक्षा करता है, वयः = पक्षियों के, न = हमारे, प्रिये = बर्हिषि कुशासन, सीदन् = बैठें।

वाक् (10.125), पुरुष (10.90), मरुत्(1.85), अभय (6.40)

अनुवाद – केवल अपने ही बल पर आश्रित रहने वाले वे मरुद्गण बढ़ गये हैं, अपनी महिमा से उन्होंने स्वर्ग पर अधिकार प्राप्त कर लिया है, (और उन्होंने) विशाल आसन/स्थान बना लिया है। जिस समय कामनाओं के पूरक/बलवान् आनन्द प्रदान करने वाले यज्ञ की, सोम के मद से गिरने वाले इन्द्र की विष्णु देवता ने रक्षा की थी (तब मरुद्गण) पक्षियों के समान अपने प्रिय कुशासन पर बैठे हुए थे, आकर बैठें।

व्याकरण – **महित्वना** = पूर्जार्थ में मह् धातु से इन् प्रत्यय, तथा भाव में त्व प्रत्यय करने से तृतीया एकवचन का रूप।

विशेष – मरुद्गणों के प्रभाव का चित्रण किया गया है।

शूरा इवेद् युयुधयो न जग्मयः श्रवस्यवो न पृतनासु येतिरे।
भयन्ते विश्वा भुवना मरुद्भयो राजान इव त्वेषसंदृशो नरः।।8।।

अन्वय – शूराः इव इत् युयुधयः न जग्मयः (मरुतः) श्रवस्यवः न पृतनासु येतिरे। विश्वा भुवना (तेभ्यः) मरुद्भ्यः भयन्ते, (ये) नरः राजानः इव त्वेषसंदृशः(सन्ति)।

शब्दार्थ – शूरा इव = वीरों की तरह, इत् = समुच्चयार्थक निपात, युयुधयः = युद्ध करने की इच्छा रखने वाले पुरुषों की भाँति, न = निषेधार्थक, जग्मयः = शीघ्रगामी वायु, श्रवस्यवः = अन्न एवं अन्न को चाहने वाले पुरुषों की तरह, पृतनासु = युद्धों में, येतिरे = प्रयत्न करते हैं, विश्वा = सभी लोग, भुवनाः = लोक, मरुद्भ्यः भयन्ते = मरुतों से भी भय खाते हैं, ये नरः = जो मनुष्य, राजान इव = राजाओं की तरह, अत्यधिक तेजस्वी रूप वाले हैं।

अनुवाद – शौर्य से भरे पुरुषों के समान तथा युद्ध के इच्छुक जनों के समान शीघ्र गमन करने वाले (मरुद्गण) अन्न/कीर्ति चाहनेवाले लोगों के समानसंग्रामों में प्रयत्न करते हैं। सभी लोक उन मरुतों से भयाक्रान्त रहते हैं, जो वृष्टि लानेवालेहैं तथा राजाओं के समान अत्यधिक भास्वर रूप वाले हैं (जिससे उन्हें देखा नहींजा सकता)।

व्याकरण – **युयुधयः** = युध् सम्प्रहारे धातु से लिट् स्थान में किन् प्रत्यय प्रथमा बहुवचन का रूप, **श्रवस्यवः** = श्रवः अन्न का नाम है, अन्नमात्मनः इच्छन्ति इति श्रवस्यवः।

विशेष – मरुतों का निर्देश वीर पुरुषों की तरह किया गया है।

त्वष्टा यद्वज्रं सुकृतं हिरण्ययं सहस्रभृष्टिं स्वपा अवर्तयत्।
धत्ते इन्द्रो नर्यपांसि कर्तवेऽहन् वृत्रं निरपामौब्जदर्णवम्।।9।।

अन्वय – स्वपाः त्वष्टा यत् सुकृतं हिरण्ययं सहस्रभृष्टिं वज्रम् अवर्तयत् (तदा) इन्द्रः (तं) नरि अपांसि कर्तवे धत्ते, वृत्रम् अर्णवम् अहन्, अपाम् निः औब्जत्।

शब्दार्थ – स्वपाः = शोभन कर्म करने वाले, त्वष्टा = विश्वकर्मा, यत् = जो, सुकृतं = सम्यक्तया सम्पादित, हिरण्ययम् = सुवर्णमय, सहस्रभृष्टिम् = अनेक धाराओं से युक्त, वज्र = जो वज्र, अवर्तयत = इन्द्र की ओर आया, नरि अपांसि = शत्रुमारण कर्म, कर्तवे = करने के लिए, धत्ते = धारण करता है, वृत्रम् = वृत्र को, अर्णवम् =

उदकयुक्त मेघ को, अहन् = वध किया, अपाम् = जल को, निः औब्जत् = मुक्त कराया/खोल दिया।

अनुवाद – सुन्दर कार्य करने वाले, कुशल शिल्पी त्वष्टा अर्थात् विश्वकर्मा ने जब अच्छी तरह बने हुए स्वर्णमय, सहस्र धारों/नोकों से युक्त वज्र को प्रेरित किया (अर्थात् इन्द्र को वज्र बनाकर दिया) तब इन्द्र ने उसे संग्राम में शत्रुनाशादि कार्यों को करने के लिए धारण किया। उन्होंने वृष्टिजल को रोकने वाले मेघ को मारा तथा जल के प्रवाह को पूर्णरूप से खोल दिया।

व्याकरण – **नरि** = संग्रामे यह नृ शब्द से संग्राम कहा गया है, **सहस्रभृष्टिः** = सहस्रं भृष्टयो धाराः यस्मिन् सः।

विशेष – इन्द्र के वज्र का चित्रण किया गया है।

ऊर्ध्वं नुनद्रेऽवतं ते ओजसा दादृहाणं चिद् बिभिदुर्वि पर्वतम्।
धमन्तो वाणं मरुतः सुदानवो मदे सोमस्य रण्यानि चक्रिरे।।10।।

अन्वय – ते (मरुतः) अवतम् ओजसा ऊर्ध्वं नुनुद्रे, (तथा) दादृहाणं पर्वतं चिद् विबिभिदुः। सुदानवः मरुतः वाणं धमन्तः सोमस्य मदे रण्यानि चक्रिरे।

शब्दार्थ – ते = वे, अवतम् = कूप, ओजसा = बल के द्वारा, ऊर्ध्वं = ऊपर, नुनुद्रे = प्रेरित किया/खोदा गया, दादृहाणं = गतिरोध वाले, पर्वतं = पर्व वाले उच्च पत्थर को भी, चिद् विबिभिदुः = खण्डित किया, सुदानवः = शोभन दानयुक्त, ते मरुतः = वे मरुद्गण, वाणं = वीणा को, धमन्तः = बजाते हुए, सोमस्य = सोमरस के, मदे =मद में, रण्यानि = सुन्दर कार्यों को, चक्रिरे = किया/सम्पन्न किया।

अनुवाद – उन मरुद्देवताओं ने जलपूर्ण कूप को अपने बल से ऊपर की ओर प्रेरित किया/उठाया (तथा) अत्यन्त दृढ़ (गतिरोधक) पर्वत/पाषाण-समूह को भी अच्छी तरह तोड़ दिया। पर्याप्त दान करने वाले उदार मरुतों ने बाँसुरी/वीणा को फूँकते/बजाते हुए सोमरस के मद/नशे में रमणीय कार्यों को किया/रमणीय धनों का प्रदान किया।

व्याकरण – **युयुधयः** = सम्प्रहारार्थक युध् धातु से लिट् के स्थान में किन् प्रत्यय, प्रथमा विभक्ति बहुवचन, **येतिरे** = यती प्रयत्ने धातु से लिट् लकार, प्रथम पुरुष, बहुवचन।

विशेष – मरुतों के पराक्रम का सटीक वर्णन प्राप्त होता है।

जिह्मं नुनुद्रेऽवतं तया दिशा सिञ्चन्नुत्सं गोतमाय तृष्णजे।
आ गच्छन्तीमवसा चित्रभानवः कामं विप्रस्य तर्पयन्त धामभिः।।11।।

अन्वय – (मरुतः) अवतं तया दिशा जिह्मं नुनुद्रे, (तथा) तृष्णजे गोतमाय उत्सम् असिञ्चन्। चित्रभानवः (मरुतः) ईम् अवसा आगच्छन्ति, धामभिः विप्रस्य कामं तर्पयन्त।

शब्दार्थ – मरुतः = मरुतों ने, अवतम् = कूप को, तया दिशा = उसी दिशा में, जिह्मं नुनुद्रे = तिर्यक् वक्र प्रेरित किया, तृष्णजे = प्यासे, गोतमाय = गोतम के लिए, उत्सं असिञ्चन् = जल प्रवाह को कूप के पास लाये, चित्रभानवः = विचित्र दीप्तियां, ईम् = इसको, अवसा = रक्षण के द्वारा, आगच्छन्ति = आते हैं, धामभिः = आयुदायक जल द्वारा, विप्रस्य = विप्र का, कामं = यथेच्छ, तर्पयन्तः = तृप्त किया।

वाक् (10.125), पुरुष (10.90), मरुत्(1.85), अभय (6.40)

अनुवाद – (मरुद्गणों ने) कूप को उसी दिशा में तिरछा करके प्रेरित किया अर्थात् बढ़ा दिया (तथा) प्यास से व्याकुल गोतम ऋषि के लिए जलप्रवाह/गड्ढे को बहाया/भर दिया। सुन्दर कान्ति वाले (मरुद्गण) उस ऋषि के पास रक्षा/सहायता के साथ आते हैं तथा अपनी शक्तियों से, आयुष्य प्रदान करने वाले जलों से मेधावी गोतम की कामना को तृप्त कर चुके हैं।

व्याकरण – **नुनुद्रे** = णुद् प्रेरणे धातु से लिट् लकार प्रथम पुरुष बहुवचन का रूप, **चित्रभानवः** = चित्रा विविधाः भानवः किरणाः येषां ते चित्रभानवः, बहुव्रीहि समास।

विशेष – मरुद्गणों द्वारा कूप से जल निकालने का वर्णन है।

या वः शर्म शशमानाय सन्ति त्रिधातूनि दाशुषे यच्छताधि।
अस्मभ्यं तानि मरुतो वि यन्त रयिं नो धत्त वृषणः सुवीरम्।।12।।

अन्वय – (हे) मरुतः, वः या (यानि) शर्म (शर्माणि) त्रिधातूनि शशमानाय (दातव्यानि) सन्ति, (यूयं तानि) दाशुषे अधियच्छत, तानि अस्मभ्यं वि यन्त। (हे) वृषणः, नः सुवीरं रयिं धत्त।

शब्दार्थ – हे मरुतः = हे मरुद्गण, वः = तुम्हारे से सम्बद्ध, यानि = जो, शर्म = सुख या गृह, त्रिधातु = पृथिवी आदि तीन स्थानों में अवस्थित, शशमानाय = स्तुति वचनों द्वारा, दातुं = देने के लिए, सन्ति = हैं, तानि = उनको, दाशुषे = देने हेतु, अधियच्छत = दो, तानि = उन्हें, अस्मभ्यं = हमारे लिए, वि यन्त = दो, हे वृषणः = कामनाओं के पूरक, नः = हमें, सुवीरं = वीर पुत्रादि सहित, रयिम् = धन, धत्त = दो।

अनुवाद – हे मरुतों, तुम लोगों के जो-जो सुख/गृह पृथ्वी आदि तीनों स्थानों पर अवस्थित एवं तुम्हारी स्तुति करने वाले यजमान को (देने के लिए) बने हुए हैं (तुम लोग उन सुखों/गृहों को) हव्य प्रदान करने वाले यजमान को अधिकमेंप्रदान करो। उन सुखों को हम लोगों को भी विशेषतया सेप्रदान करो। कामनाओं की पूर्ति करने वाले हे मरुद्गण, हम लोगों को अच्छे-अच्छे वीर पुत्र-पौत्रों से सम्पन्न धन–सम्पत्ति प्रदान करो।

व्याकरण – **शशमानाय** = शश धातु से तच्छील्य अर्थ में चानशि करने पर चतुर्थी एकवचन का रूप, **सुवीराः** = शोभनाः वीराः यस्मिन् तत् तादृशम् इति बहुव्रीहि समास।

विशेष – मरुद्गण स्तुति करने वालों की कामनाओं को पूर्ण करते हैं, यह मन्त्र का वर्ण्य-विषय है।

11.5 अभय (अथर्ववेद 6.40)

ऋषि – अथर्वा (अभयकाम – 1-2मन्त्र), अथर्वा (स्वस्त्ययनकाम – 3 मन्त्र)
देवता – मन्त्रोक्ता (1-2 मन्त्र), इन्द्र (3 मन्त्र)।

अभयं द्यावापृथिवी इहास्तु नोभयं सोमः सविता नः कृणोतु।
अभयं नोऽस्तुर्वन्तरिक्षं सप्तऋषीणां च हविषाभयं नो अस्तु।।1।।

अन्वय – हे द्यावापृथिवी, इह नः अभयम् अस्तु। सोमः सविता नः अभयं कृणोतु। (तथा) उरु अन्तरिक्षं नः अभयम् अस्तु। सप्तऋषीणां हविषा नः अभयम् अस्तु।

शब्दार्थ – हे द्यावापृथिवी = हे द्युलोक और पृथिवी लोक (तुम दोनों की कृपा से), इह = इस देश में, नः = हम, अभयम् = भयरहित, अस्तु = हों, सोमः = चन्द्र, सविता = सूर्य, नः = हमको, अभयं = निर्भय, कृणोतु = करें (तथा द्युलोक और पृथिवी लोक के मध्य विद्यमान), उरु = विशाल, अन्तरिक्षं = आकाश, नः = हमारे लिये, अभयम् = भयरहित, अस्तु = हो, सप्त ऋषीणां = विश्वामित्रादि सात ऋषियों सम्बन्धी, हविषा = दीयमान हवि के द्वारा, नः = हमें, अभयम् = अभय, अस्तु = हो।

अनुवाद – हे द्युलोक और पृथिवी लोक, आप दोनों की कृपा से इस देश में हम निर्भय हों, चन्द्र और सूर्य हमें निर्भय बनायें। द्युलोक और पृथिवी लोक के मध्य विद्यमान विस्तृत आकाश हमारे लिए भय रहित हो। विश्वामित्र आदि सप्त ऋषियों को हमारे द्वारा दी जाने वाली हवि से हम अभय प्राप्त करें। चोरव्याघ्रादि से होने वाले भय से मुक्त हों।

व्याकरण – **सप्तर्षीणाम्** = सप्त च ते ऋषयः, तेषां इति विग्रह, द्विगु समास।

विशेष – विश्वामित्रो जमदग्निर्भरद्वाजोऽथ गौतमः, अत्रिर्वसिष्ठः कश्यप इत्येते सप्त ऋषयः।

अस्मै ग्रामाय प्रदिशश्चतस्र ऊर्जं सुभूतं स्वस्ति सविता नः कृणोतु।
अशत्रिन्द्रो अभयं नः कृणोत्वन्यत्र राज्ञामभि यातु मन्युः।।2।।

अन्वय – अस्मै ग्रामाय प्रदिशः चतस्रः ऊर्जं सुभूतं स्वस्ति नः सविता करोतु। अशत्रुः इन्द्रः नः अभयं कृणोतु। राज्ञां मन्युः अन्यत्र अभि यातु।

शब्दार्थ – अस्मै = इस, ग्रामाय = ग्राम के लिये, प्रदिशः = पूर्वादि दिशायें, चतस्रः = चारों, ऊर्जम् = अन्न, सुभूतम् = सुन्दर उत्पन्न हो, स्वस्ति = तथा कल्याणकारी हो, नः = हमारे लिये, सविता = सभी के प्रेरक सूर्य देव, कृणोतु = करें, अशत्रुः = अनुपजातविरोधी, इन्द्रः = इन्द्र देव, नः = हमको, अभयं = शत्रुविषयक भयाभाव, कृणोतु = करें, तथा राज्ञां = राजा का, मन्युः = क्रोध, अन्यत्र = कहीं और, अभि यातु = चला जाये।

अनुवाद – हमारे आवा भूत इस ग्राम की पूर्वादि चारों दिशायें प्रभूत अन्न उत्पन्न करने वाली हों तथा वह कल्याणयुक्त हो। सूर्य हमारा शाश्वत् कल्याण करे। इन्द्र देवता हमें शत्रुओं से मुक्त करे। इन्द्र देव के प्रसाद से राजाओं का क्रोध हमसे बहुत दूर चला जाये।

व्याकरण – **अस्मै ग्रामाय** = यहाँ षष्ठी के अर्थ में चतुर्थी का प्रयोग हुआ है। **प्रदिशश्चतस्रः** = यहाँ अत्यन्त संयोग में द्वितीया का प्रयोग है।

विशेष – शत्रुओं से मुक्ति हेतु तथा राजकोप से रक्षण हेतु प्रार्थना की गई है।

अनमित्रं नो अधरादनमित्रं न उत्तरात्।
इन्द्रानमित्रं नः पश्चादनमित्रं पुरस्कृधि।।3।।

अन्वय – हे इन्द्र, नः अधरात् अनमित्रं कुरु। उत्तरात् नः अनमित्रं कुरु। नः पश्चात् अनमित्रं कुरु। तथा च पुरः अनमित्रं कृधि।

शब्दार्थ – हे इन्द्र, नः = हमको, अधरात् = दक्षिण दिशा से, अनमित्रम् = शत्रुरहित करो, उत्तरात् = उत्तर दिशा से, नः = हमको, अनमित्रम् = शत्रुविहीन करो, नः =

हमको, पश्चात् = पश्चिम दिशा से, अनमित्रम् = शत्रुविहीनता प्रदान करें तथा हे देव, नः = हमें, पुरः = पूर्व दिशा से, अनमित्रम् = शत्रुविहीन, कृधि = करें।

वाक् (10.125), पुरुष (10.90), मरुत्(1.85), अभय (6.40)

अनुवाद – हे इन्द्र हमको दक्षिण दिशा से शत्रुरहित करो, उत्तर दिशा से हमको शत्रुविहीन करो, हमको पश्चिम दिशा से शत्रुविहीनता प्रदान करें तथा हे देव हमें पूर्व दिशा से, शत्रुविहीन करें।

व्याकरण – **अधर** शब्द से दक्षिण दिशा जाननी चाहिये।

विशेष – पूर्वादि चारों दिशाओं को शत्रुओं से रहित करने की प्रार्थना की गई है।

11.6 सारांश

प्रिय विद्यार्थियों! इस इकाई में आपने वाक्, पुरुष, मरुत् और अभय सूक्त के मन्त्रों का अध्ययन किया। आपने जाना कि वाणी की सर्वव्यापकता अपूर्व है। उसके द्वारा अनेक दैवीय शक्तियों के अनेक तत्त्वों का नियन्त्रण भी किया जाता है। वस्तुतः कैसी भी सृष्टि उसकी इच्छा के अधीन है। सृष्टि, स्थिति, संहार यह त्रैविध्य भी वाक् देवता के अधीन है।

अनन्तशरीरावयवी विराट् पुरुष मुख्यतः सृष्टिकर्त्ता है। उसकी महिमा से भूलोक, अन्तरिक्ष लोक तथा द्युलोक की उत्पत्ति हुई। संसार में चर-अचर की सृष्टि वर्णाश्रम धर्म यह सब सृष्टि प्रक्रिया के अंग हैं। विराट् पुरुष का यजन सर्वप्रथम सृष्टियज्ञरूप धर्म था।

मरुत् किंवा मरुद्गण स्व पराक्रम तथा गतिशीलता के क्रम में प्रसिद्ध हैं। पुराणों में इनकी संख्या 49 स्वीकार की गयी है। ये पराक्रमशील, वृष्टिकारक, गतिशील, मेघों के प्रेरक प्रभृति कई नाम देखे जाते हैं। यह स्तोता की कामनाओं के पूरक हैं।

द्युलोक, पृथिवी लोक एवं अन्तरिक्ष लोक, सप्तर्षिगण, सोम एवं सूर्य हमें अभय प्रदान करें। ग्राम की चारों दिशायें, जो तेजयुक्त हैं, सूर्य उनका कल्याण करें तथा राजाओं का क्रोध भी दूर हो। समस्त दिशायें हमें अभय प्रदान करने वाली हों।

11.7 शब्दावली

अभिषव	–	पत्थर से कूटकर रस निकालना
आज्य	–	गाय का घी
आयुध	–	हथियार
अपौरुषेय	–	जो पुरुष द्वारा निर्मित न हो
आर्द्र	–	गीला
अवस्थित	–	स्थित
अनन्तशरीरावयवी	–	अनन्त शरीर के अवयव वाला
त्रैविध्य	–	तीन प्रकार का
चर-अचर	–	सजीव एवं निर्जीव

11.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. **द न्यू वैदिक सिलेक्शन** प्रथम एवं द्वितीय भाग, तैलंग एवं चौबे, भारतीय विद्या प्रकाशन, वाराणसी।
2. **ऋग्वेद संहिता,** सायण भाष्य, राष्ट्रियसंस्कृतसंस्थानम्, नई दिल्ली।
3. **अथर्ववेद संहिता,** सायण भाष्य, विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान, होशियारपुर।

11.9 अभ्यास प्रश्न

1. ''**अहं राष्ट्री संगमनी वसूनां चिकितुषी प्रथमा यज्ञियानाम्।**
   तां मा देवा व्यदधुः पुरुत्रा भूरिस्थात्रां भूर्यावेशयन्तीम्।।'' मन्त्र की ससन्दर्भ व्याख्या कीजिए।
2. वाक् देवता की सर्वव्यापकता पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।
3. ''**तस्माद्यज्ञात्सर्वहुत ऋचः सामानि जज्ञिरे।**
   छन्दांसि जज्ञिरे तस्माद् युजुस्तस्मादजायत।।''मन्त्र की ससन्दर्भ व्याख्या कीजिए।
4. पुरुष सूक्त के सार को संक्षेप में लिखिए।
5. ''**प्र यद्रथेषु पृषतीरयुग्ध्वं वाजे अद्रिं मरुतो रंहयन्तः।**
   उतारुषस्यवि ष्यन्ति धाराश्चर्मेवोदभिर्व्युन्दन्ति भूम।।''मन्त्र की ससन्दर्भ व्याख्या कीजिए।
6. मरुद् गणों के स्वरूप पर संक्षित टिप्पणी कीजिए।
7. ''**अनमित्रं नो अधरादनमित्रं न उत्तरात्।**
   इन्द्रानमित्रं नः पश्चादनमित्रं पुरस्कृधि।।'' मन्त्र की ससन्दर्भ व्याख्या कीजिए।
8. अभय सूक्त के वर्ण्य विषय पर प्रकाश डालिए।

इकाई 12 नासदीय (10.129), हिरण्यगर्भ (10.121), विष्णु (1.154), सांमनस्य (3.30)

इकाई की रूपरेखा

12.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप –

- ऋग्वेद एवं अथर्ववेद के प्रमुख सूक्तों के वर्ण्य-विषय से अवगत हो सकेंगे।
- सृष्टि की उत्पत्ति का प्रतिपादन कर सकेंगे।
- नासदीय, हिरण्यगर्भ, सांमनस्य आदि के कर्म, गुण एवं स्वरूपों के वैदिक आधार से अवगत हो सकेंगे।
- प्रकृत सूक्तों के अध्ययन से वैदिक शब्दावली एवं विषयों का अवगाहन कर सकेंगे।

12.1 प्रस्तावना

अपौरुषेय वेद विश्व के प्राचीनतम साहित्य की आधारशिला हैं। कलिकाल के प्रभाव को पूर्व में जानकर भगवान् वेदव्यास ने मन्त्रों के वैशिष्ट्य, उपयोग, प्रकृति प्रभृति विभिन्न पक्षों का आश्रय ग्रहणकर ऋक्, यजु, साम, अथर्व संहिता के रूप में विभक्त किया। श्रीमद्भागवत महापुराण के **बारहवें स्कन्ध के छठें अध्याय** में उपर्युक्त विभाग का सन्दर्भ प्राप्त होता है, यथा –

> **क्षीणायुषः क्षीणसत्त्वान् दुर्मेधान् वीक्ष्य कालतः।**
> **वेदान् ब्रह्मर्षयो व्यस्यन् हृदिस्थाच्युतचोदिताः।।47।।**

वेद मन्त्रों में जो कतिपय स्थलों पर अनुवाक्/अध्याय/मण्डल/सूक्त इत्यादि के अन्तर्गत संकलित हैं, सृष्टि प्रपंच, ब्रह्म का स्वरूप, स्तुति, यज्ञ प्रक्रिया प्रभृति अन्यान्य विषयों का सन्दर्भ प्राप्त होता है। प्रकृत प्रसंग में आप ऋग्वेद एवं अथर्ववेद के प्रमुख

सूक्तों का अध्ययन करेंगे जो सृष्टि, प्रजापति, माया, विष्णु एवं परस्पर व्यवहारादि विषयों को उपस्थापित करते हैं।

12.2 नासदीय सूक्त (ऋग्वेद 10.129)

ऋषि – परमेष्ठी प्रजापति, देवता – सृष्टि-स्थिति-प्रलय कर्ता परमात्मा।
नासदासीन्नो सदासीत् तदानीं नासीद्रजो नो व्योमा परो यत्।
किमावरीवः कुह कस्य शर्मन्नम्भः किमासीद्गहनं गभीरम्।।1।।

अन्वय – तदानीम् असत् न आसीत् सत् नो आसीत् रजः न आसीत् व्योम नोयत् परः आवरीवः, कुह कस्य शर्मन् गहनं गभीरम्।

शब्दार्थ – न = नहीं, असत् = नामरूपादि रहित अवस्था, आसीत् = थी, नो = नहीं, सत् = नामरूपात्मक अवस्था, आसीत् = थी, तदानीम् = उस समय, न = नहीं, आसीत् = था, रजः = लोक, नो = नहीं, व्योम = आकाश, परः = ऊपर, यत् = जो है, किम् = कौन, आ अवरीवः = आवृत किया था, कुह = कहाँ, कस्य = किसकी, शर्मन् = सुरक्षा में, अम्भः = जल, किम् = क्या (प्रश्न वाचक शब्द), आसीत् = था, गहनम् = अपार, गभीरम् = गहरा।

अनुवाद – उस समय अर्थात् सृष्टि की उत्पत्ति से पूर्व असत् अर्थात् अभावात्मक/सत् भाव तत्त्व भी नहीं था, लोक मृत्यु लोक और पाताल लोक नहीं थे, अन्तरिक्ष नहीं था और ऊपर जो कुछ है वह भी नहीं था, वह आवरण करने वाला तत्त्व कहाँ और किसके संरक्षण में था? उस समय अपार गम्भीर जल था? अर्थात् वे सब नहीं थे।

व्याकरण – कुह = किं शब्द से सप्तम्यर्थ में ह प्रत्यय, **कु तिहोः** सूत्र से क्व आदेश।

विशेष – लोकः = लोक रजांसि उच्यन्ते (निरुक्त 4.19)

न मृत्युरासीदमृतं न तर्हि न रात्र्या अह्न आसीत् प्रकेतः।
आनीदवातं स्वधया तदेकं तस्माद्धान्यन्न परः किं चनास।।2।।

अन्वय – तर्हि मृत्युः नासीत् न अमृतम्, रात्र्याः अह्नः प्रकेतः नासीत् तत् आनीत अवातम्, स्वधया एकम् ह तस्मात् अन्यत् किंचन न आस न परः।

शब्दार्थ – न = नहीं, मृत्युः = मृत्यु, आसीत् = थी, अमृतम् = अमृतत्व, न = नहीं, तर्हि = तब, रात्र्याः = रात्री का, अह्नः = दिन का, आसीत् = था, प्रकेतः = चिह्न या भेदात्मक ज्ञान, आनीत् = सांस ले रहा था, अवातम् = बिना वायु का, स्वधया = इच्छाशक्ति से, तत् = वह, एकम् = एक, तस्मात् = उससे, अन्यत् = अलग, न = नहीं, परः = बढ़कर, किम् = कुछ, चन = भी, आस = था।

अनुवाद – उस समय मृत्यु नहीं थी और अमृतत्व भी नहीं था। रात्रि और दिन का ज्ञान भी नहीं था। तब वह (ब्रह्म तत्त्व) ही केवल प्राणयुक्त, क्रियाशून्य और माया के साथ जुड़ा हुआ एक रूप में विद्यमान था, उससे पहले कुछ भी नहीं था।

व्याकरण – स्वधया = स्वस्मिन् धीयते ध्रियत आश्रित्य वर्तत इति स्वधा माया।

विशेष – सृष्टि की प्रागवस्था का निर्देश प्राप्त होता है।

नासदीय (10.129),
हिरण्यगर्भ (10.121),
विष्णु (1.154),
सांमनस्य (3.30)

तम आसीत् तमसा गूळहमग्रेऽप्रकेतं सलिलं सर्वमा इदम्।
तुच्छ्येनाभ्वपिहितं यदासीत्तपसस्तन्महिनाजायतैकम्।।3।।

अन्वय – अग्रे तमसा गूढम् तमः आसीत्, अप्रकेतम् इदम् सर्वम् सलिलं, आः यत् आभु तुच्छ्येन अपिहितम् आसीत् तत् एकम् तपस महिना अजायत।

शब्दार्थ – तमः = अन्धकार, आसीत् = था, तमसा = अन्धकार से, गूळहम् = ढंका हुआ, अग्रे = सृष्टि के पहले, अप्रकेतम् = चिह्नरहित/भेदात्मक ज्ञान-रहित, सलिलम् = जल, सर्वम् = सम्पूर्ण, आः = था, इदम् = यह जगत्, तुच्छ्येन = भावरूप अज्ञान से, आभु = सर्वव्यापी, अपिहितम् = आवृत, यत् = जो, आसीत् = स्थित था, तपसः = तपस्या की, तत् = वह, महिना = महिमा से, अजायत = उत्पन्न हुआ, एकम् = एक।

अनुवाद – सृष्टि्युत्पत्ति से पूर्व सर्वत्र अन्धकार था। यह सम्पूर्ण जगत् जलरूप में था। अर्थात् उस समय कार्य और कारण दोनों मिले हुए थे। वह स्थित था। सर्वव्यापी भावरूप अज्ञान था। यह जगत् ईश्वर के संकल्प एवं तप से उत्पन्न हुआ।

व्याकरण – **सलिलम्** = गत्यर्थक षल् धातु से इलच् प्रत्यय।

विशेष – **तपसः** = यः सर्वज्ञः सर्वविद्यस्य ज्ञानमयं तपः (मुण्डकोनिषद1.1.9)।

कामस्तदग्रे समवर्तताधि मनसो रेतः प्रथमं यदासीत्।
सतो बन्धुमसति निरविन्दन् हृदि प्रतीष्या कवयो मनीषा।।4।।

अन्वय – अग्रे तत् कामः समवर्तत यत् मनसः अधि प्रथमं रेतः आसीत्, सतः बन्धुं कवयः मनीषा हृदि प्रतीष्य असति निरविन्दन्।

शब्दार्थ – कामः = इच्छा, तत् = उसमें, अग्रे = सर्वप्रथम, समवर्तत = उत्पन्न हुआ, अधिमनसः = मन का, रेतः = विकार, प्रथमम् = प्रथम, यत् = जो, आसीत् = था, सतः = नामरूपात्मक जगत् का, बन्धुम् = बन्धन, सम्बन्ध, असति = नामरूपरहित तत्त्व में, निरविन्दन् = पाया, हृदि = अन्तःकरण में, प्रतीष्य = विचार कर, कवयः = बुद्धिमानों ने, मनीषा = प्रज्ञा से।

अनुवाद – सृष्टि्युत्पत्ति के समय सर्वप्रथम काम अर्थात् सृष्टि रचना करने की इच्छा शक्ति उत्पन्न हुई, जो परमेश्वर के मन में सबसे पहला बीजरूप कारण हुआ। बुद्धिमानों ने प्रज्ञा से विचारकर नामरूपात्मक जगत् का कारण नामरूप रहित तत्त्व में पाया।

व्याकरण – **अविन्दन्** = विद् धातु, लङ् लकार, प्रथम पुरुष, बहुवचन।

विशेष – **कवयः** = क्रान्तदर्शना अनागतवर्तमानाभिज्ञा योगिनः।

तिरश्चीनो विततो रश्मिरेषामधः स्विदासी३दुपरि स्विदासी३त्।
रेतोधा आसन् महिमान आसन् त्स्वधा अवस्तात् प्रयतिः परस्तात्।।5।।

अन्वय – एषाम् रश्मिः विततः तिरश्चीन अधः स्वित् आसीत्, उपरि स्वित् आसीद्रेतोधाः आसन् महिमानः आसन् स्वधा अवस्तात् प्रयति परस्तात्।

शब्दार्थ – तिरश्चीनः =तिरछा जाने वाला अर्थात् मध्य में, विततः = फैला हुआ था, रश्मिः = किरणों की तरह, एषाम् = उनका, अधः = नीचे, स्वित् = शायद, आसीत् = था, उपरि = ऊपर, स्वित् = शायद, आसीत् = था, रेतोधाः = सृष्टि का बीज धारण

करने वाले, आसन् = थे, महिमानः = आकाशादि महाभूत, आसन् = थे, स्वधा = भोग्य पदार्थ, अवस्तात् = नीचे, प्रयतिः = भोक्ता तत्त्व, परस्तात् = ऊपर।

अनुवाद – उनका (कार्यजाल जो) किरणों के समान शीघ्र फैला हुआ था, क्या वह मध्य में था? अथवा, क्या वह नीचे था? अथवा, क्या वह ऊपर था? (सृष्टि का) बीज धारण करने वाले, (आकाशादि) महाभूत थे, नीचे भोग्य था, ऊपर भोक्ता।

व्याकरण – अवस्तात् = विभाषा परावराभ्याम् सूत्र से प्रथमार्थ में अस्तातिः, अस्ताति च सूत्र से अवर आदेश के स्थान पर अवादेश, प्रकृतिभाव।

विशेष – स्विदासी३ = विचार्यमाणानाम् (पाणिनीय सूत्र 8.2.97) से प्लुत।

को अद्धा वेद क इह प्र वोचत् कुत आजाता कुत इयं विसृष्टिः।
अर्वाग्देवा अस्य विसर्जनेनाऽथ को वेद यत आबभूव।।6।।

अन्वय – कः अद्धा वेद कः इह प्रवोचत् इयं विसृष्टिः कुतः कुतः आजाता, देवा अस्य विसर्जनेन अर्वाक् अथ कः वेद यतः आ बभूव।

शब्दार्थ – कः = कौन, अद्धा = सही रूप में, वेद = जानता है, कः = कौन, इह = यहाँ, प्र वोचत् = कहेगा, कुतः = कहाँ से, आजाता = उत्पन्न हुई है, कुतः = कहाँ से, इयम् = यह, विसृष्टिः = विविध प्रकार की सृष्टि, अर्वाक् = अर्वाचीन, देवाः = देवता, अस्य = इस, विसर्जनेन = विविधरूपा सृष्टि से, अथ = तब, कः = कौन, वेद = जानता है, यतः = जहाँ से, आबभूव = उत्पन्न हुई है।

अनुवाद – कौन इस बात को यथार्थरूप से जानता है? और कौन इस लोक में सृष्टि के उत्पन्न होने के विवरण को बता सकता है? देवता भी इस विविध प्रकार की सृष्टि उत्पन्न होने के परवर्ती हैं। अतः ये देवगण भी स्वावस्था से पूर्व के विषय में नहीं बता सकते। इसलिए कौन मनुष्य जानता है, जिस कारण यह समस्त संसार उत्पन्न हुआ।

व्याकरण – वेद = ज्ञानार्थक विद् धातु, लट् लकार, प्रथम पुरुष, एकवचन।

विशेष – सृष्टि उत्पत्ति विषयक अज्ञान की चर्चा प्राप्त होती है।

इयं विसृष्टिर्यत आबभूव यदि वा दधे यदि वा न।
यो अस्याध्यक्षः परमे व्योमन् सो अङ्ग वेद यदि वा न वेद।।7।।

अन्वय – इयं विसृष्टिः यतः आबभूव यदि वा दधे यदि वा न। अस्य यः अध्यक्ष परमे व्योमन् अङ्ग सा वेद यदि न वेद।

शब्दार्थ – इयम् = यह, विसृष्टिः = विविधरूपा सृष्टि, यतः = जहाँ से, आबभूव = उत्पन्न हुई है, यदि = अगर, वा = अथवा, दधे = धारण किया था, यदि = अगर, वा = अथवा, न = नहीं, यः = जो, अस्य = इसका, अध्यक्षः = नियामक, परमे = ऊँचे, व्योमन् = आकाश में, सः = वह, अङ्ग = निश्चित अर्थ का वाचक निपात, वेद = जानता है, यदि = अगर, वा अथवा, न = नहीं, वेद = जानता है।

अनुवाद – यह विविध प्रकार की सृष्टि जिस प्रकार के उपादान और निमित्त कारण से उत्पन्न हुई इसका मुख्य कारण है ईश्वर के द्वारा इसे धारण करना। इसके अतिरिक्त अन्य कोई धारण नहीं कर सकता। इस सृष्टि का जो स्वामी ईश्वर है, अपने प्रकाश/आनन्दस्वरूप में प्रतिष्ठित है। वह आनन्दस्वरूप परमात्मा ही इस विषय को जानता है तदतिरिक्त (इस सृष्टि उत्पत्ति तत्त्व को) कोई नहीं जानता है।

व्याकरण – **यतः** – जनिकर्तुः प्रकृतिः सूत्र से अपादान संज्ञा में पंचमी में तसिल्।

विशेष – परब्रह्म के सृष्टि ज्ञान वैशिष्ट्य का उल्लेख किया गया है।

नासदीय (10.129), हिरण्यगर्भ (10.121), विष्णु (1.154), सांमनस्य (3.30)

12.3 हिरण्यगर्भ सूक्त (ऋग्वेद 10.121)

ऋषि – हिरण्यगर्भ, देवता – क संज्ञक प्रजापति।

हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्।
स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम।।1।।

अन्वय – हिरण्यगर्भः अग्रे समवर्तत, जातः भूतस्य एकः पतिः आसीत्, स इमां पृथिवीं उत द्यां दाधार, कस्मै देवाय हविषा विधेम।

शब्दार्थ – हिरण्यगर्भः = स्वर्णमय अंडे का गर्भभूत प्रजापति, अग्रे = सृष्टि की रचना से पूर्व, समवर्तत = उत्पन्न हुआ, जातः = उत्पन्न होते ही, भूतस्य = संसार का, पतिः = ईश्वर, आसीत् = हो गया, सः = संसार का स्वामी बने हुए उसने, इमां = पृथ्वी को, उत = और, द्याम् = आकाश को, दाधार = धारण किया है, कस्मै देवाय = उस प्रजापति नामक देवता के लिए, हविषा = हविष्यान्न द्वारा, विधेम = (हम) प्रस्तुत प्रसन्न करते हैं।

अनुवाद – हिरण्यगर्भ प्रजापति सबसे पूर्व उत्पन्न हुआ। वह उत्पन्न होते ही सारी सृष्टि का एकमात्र स्वामी बना। उसने इस पृथिवी और आकाश को धारण कर लिया। उस प्रजापति देवता का हम हविष्यान्न द्वारा पूजन करें।

व्याकरण – **समवर्तत,** सम्+वृत्, लङ् लकार, प्रथम पुरुष, एकवचन।

विशेष – विश्व की शाश्वत समस्या सृष्ट्युत्पत्ति रहस्य का सन्दर्भ है।

य आत्मदा बलदा यस्य विश्व उपासते प्रशिषं यस्य देवाः।
यस्य छायामृतं यस्य मृत्युः कस्मै देवाय हविषा विधेम।।2।।

अन्वय – य आत्मदा बलदा यस्य प्रशिषं विश्वे उपासते, यस्य देवाः, यस्य अमृतं, यस्य मृत्युः छाया, कस्मै देवाय हविषा विधेम।

शब्दार्थ – आत्मदा = आत्माओं का प्रवर्तक, बलदा = बलप्रदायक, यस्य = जिस प्रजापति के, प्रशिषं = शासन में, विश्वे = सभी चराचर लोकों के प्राणी, उपासते = उपासना करते हैं, देवाः = अमर लोग/द्योतनशील, अमृतं = अमरता/मरणाभाव, मृत्यु = मरण, छाया = प्रतिमूर्ति, कस्मै देवाय = उस प्रजापति नामक देवता के लिए, हविषा = हविष्यान्न द्वारा, विधेम = (हम) प्रस्तुत प्रसन्न करते हैं।

अनुवाद – जो प्रजापति प्राण तथा बल का प्रदाता है, जिसकी आज्ञा को समस्त संसार और देवता मानते हैं, अमरता एवं मृत्यु जिसकी छाया है। उस प्रजापति देवता का हम हविष्यान्न द्वारा पूजन करें।

व्याकरण – **प्रशिषम्,** प्र+शास्+क्विप्, द्वितीया विभक्ति, एकवचन।

विशेष – प्रजापति को आत्माओं का प्रवर्तक माना गया है।

यः प्राणतो निमिषतो महित्वैक इद्राजा जगतो बभूव।
य ईशे अस्य द्विपदश्चतुष्पदः कस्मै देवाय हविषा विधेम।।3।।

अन्वय – यः प्राणतः निमिषतः जगतः महित्वा एकः इत् राजा बभूव। यः अस्य द्विपदः चतुष्पद ईशे। कस्मै देवाय हविषा विधेम।

शब्दार्थ – प्राणतः = प्राणों को धारण करने वालों का, निमिषतः = पलक झपकने वालों का, जगतः = संसार से, महित्वा = महिमा से, एक = अद्वितीय, इत् = ही, राजा = प्रभु, बभूव = हो गया, अस्य = इस दृश्यमान जगत् के, द्विपदः = दो पैरों का आश्रय लेने वाले मनुष्यादि, चतुष्पदः = गौ आदि पशुओं पर, ईशे = शासन करता है, कस्मै देवाय = उस प्रजापति नामक देवता के लिए, हविषा = हविष्यान्न द्वारा, विधेम = (हम) प्रस्तुत प्रसन्न करते हैं।

अनुवाद – जो प्रजापति श्वास लेते हुए तथा पलक झपकते हुए प्राणियों वाले संसार का अपने महत्त्व से अकेले ही स्वामी हो गया, जो इस मनुष्य एवं पक्षी आदि दो पैरों वाले, पशु आदि चार पैरों वाले प्राणियों पर शासन करता है। उस प्रजापति देवता का हम हविष्यान्न द्वारा पूजन करें।

व्याकरण – **ईशे** = ईश् धातु, लट् लकार, प्रथम पुरुष, एकवचन, वैदिक रूप, **निमिषतः** = नि+मिष् (स्फुरित होना, चलना), शतृ प्रत्यय, षष्ठी विभक्ति, एकवचन।

विशेष – प्रजापति के प्रभुत्व का उल्लेख किया गया है।

यस्येमे हिमवन्तो महित्वा यस्य समुद्रं रसया सहाहुः।
यस्येमाः प्रदिशो यस्य बाहू कस्मै देवाय हविषा विधेम।।4।।

अन्वय – इमे हिमवन्तः यस्य महित्वा, रसया सह समुद्रं यस्य आहुः, यस्य इमाः प्रदिशः यस्य बाहू, कस्मै देवाय हविषा विधेम।

शब्दार्थ – इमे = ये प्रसिद्ध, हिमवन्त = हिमालय पर्वत श्रेणियाँ, यस्य = जिस प्रजापति के, महित्वा = महिमा को, रसया सह = पृथ्वी/नदी समूह के साथ, समुद्रं = पयोधि, आहुः = कहते हैं, इमाः = ये चारों ओर वर्तमान, प्रदिशः = ईशान, वायव्य, नैर्ऋत्य और आग्नेय आदि कोण, बाहू = भुजाओं के समान प्रधान पूर्व, पश्चिम, उत्तर ओर दक्षिण दिशाएं, कस्मै देवाय = उस प्रजापति नामक देवता के लिए, हविषा = हविष्यान्न द्वारा, विधेम = (हम) प्रस्तुत प्रसन्न करते हैं।

अनुवाद – ये हिमालय पर्वत जिसके महत्त्व को बताते हैं, नदी/पृथ्वी के सहित समुद्र जैसी महिमा को प्रकट करते हैं, जिसकी ये दिशाएँ और विदिशाएँ हैं। उस प्रजापति देवता का हम हविष्यान्न द्वारा पूजन करें।

व्याकरण – **हिमवन्तः** = हिमा अस्मिन् सन्तीति हिमवान् ते। हिम+मतुप्, प्रथमा विभक्ति, एकवचन।

विशेष – सम्पूर्ण चराचर जगत् उस प्रजापति की महिमा का ही परिणाम है।

येन द्यौरुग्रा पृथिवी च दृळहा येन स्वः स्तभितं येन नाकः।
यो अन्तरिक्षे रजसो विमानः कस्मै देवाय हविषा विधेम ।।5।।

अन्वय – येन द्यौः उग्रा च पृथिवी दृळहा, येनः स्वः स्तभितम् येन नाकः, यः अन्तरिक्षे रजसः विमानः कस्मै देवाय हविषा विधेम।

शब्दार्थ – येन = जिस प्रजापति के द्वारा, द्यौः = अन्तरिक्ष, उग्रा = उग्र रूप में वर्तमान, पृथिवी = भूमि, दृळहा = स्थिरता को ले जाई गई, स्वः = स्वर्ग, स्तभितम् = स्थिर बनाया, नाकः = सूर्य, अन्तरिक्षे = आकाश में, रजसः = लोकों का, विमानः = निर्माता, कस्मै देवाय = उस प्रजापति नामक देवता के लिए, हविषा = हविष्यान्न द्वारा, विधेम = (हम) प्रस्तुत प्रसन्न करते हैं।

अनुवाद – जिसके द्वारा आकाश और उग्र पृथ्वी दृढ़ बनाई गई। जिसने स्वर्ग को स्थिर बनाया तथा सूर्य को आकाश में स्थापित किया। जिसने आकाश में जल उत्पन्न किया। उस प्रजापति देवता का हम हविष्यान्न द्वारा पूजन करें।

व्याकरण – **दृळहा** = यह 'दृढा' का वैदिक रूप है, दृह्+क्त+टाप्।

विशेष – प्रजापति को ही सम्पूर्ण सृष्टि का जनक माना गया है।

यं क्रन्दसी अवसा तस्तभाने अभ्यैक्षेतां मनसा रेजमाने।
यत्राधिसूर उदितो विभाति कस्मै देवाय हविषा विधेम।।6।।

अन्वय – रेजमाने क्रन्दसी अवसा तस्तभाने य मनसा अभि ऐक्षेताम्, यत्र अधिसूरः उदितः विभाति, कस्मै देवाय हविषा विधेम।

शब्दार्थ – रेजमाने = प्रकाशमान, क्रन्दसी = द्यावापृथिवी पर, अवसा = रक्षा द्वारा, तस्तभाने = स्थिरता को प्राप्त होने पर, यः = जिस प्रजापति को, मनसा = अपनी बुद्धि से, अभि ऐक्षेताम् = देखा था, यत्र = जिस प्रजापति में, अधि = आधारभूत होने पर, सूरः = सूर्य, उदितः = उदय होता हुआ, विभाति = प्रकाशित/शोभित होता है, कस्मै देवाय = उस प्रजापति नामक देवता के लिए, हविषा = हविष्यान्न द्वारा, विधेम = (हम) प्रस्तुत प्रसन्न करते हैं।

अनुवाद – प्रकाशमान आकाश और पृथ्वी, प्रजापति से प्राप्त की गई रक्षा द्वारा स्थिर होकर, जिस प्रजापति को अपने महत्त्व का कारण मानते हैं। जिसके आधार पर सूर्य उदित होकर शोभा देता है। उस प्रजापति देवता का हम हविष्यान्न द्वारा पूजन करें।

व्याकरण – **तस्तभाने** = स्तभ्+कानच्+टाप् तस्तभाना, प्रथमा विभक्ति, द्विवचन।

विशेष – आकाश और पृथ्वी की रक्षा करने का श्रेय प्रजापति को है।

आपो ह यद् बृहतीर्विश्वमायन्गर्भं दधाना जनयन्तीरग्निम्।
ततो देवानां समवर्ततासुरेकः कस्मै देवाय हविषा विधेम।।7।।

अन्वय – बृहती अग्निं जनयन्तीः, गर्भम् दधानाः यत् आपः ह विश्वमायन् ततः देवानाम् एकः असुः समवर्तत, कस्मै देवाय हविषा विधेम।

शब्दार्थ – बृहतीः = महान्/विस्तृत, अग्निम् = वैश्वानर अग्नि को, जनयन्तीः = उत्पन्न करती हुई, गर्भम् = हिरण्मय अंडे के गर्भभूत प्रजापति को, दधानाः = धारण करती हुई, यत् = जो, आपः = जल, ह = ही, विश्वम् = सम्पूर्ण जगत में, आयन = फैल गया, ततः = गर्भभूत प्रजापति से, देवानाम् = देवताओं तथा अन्य प्राणियों का, एकः = अद्वितीय, असुः = प्राणात्मक वायु, समवर्तत = उत्पन्न हुआ, कस्मै देवाय = उस प्रजापति नामक देवता के लिए, हविषा = हविष्यान्न द्वारा, विधेम = (हम) प्रस्तुत प्रसन्न करते हैं।

अनुवाद – विस्तृत जलराशि अग्नि को उत्पन्न करती हुई और हिरण्यगर्भ को धारण करती हुई सारे विश्व में फैल गई। उससे दैवी और मानुषी सृष्टि में अद्वितीय प्राणवायु रूप में यह उत्पन्न हुआ। हम उस प्रजापतिदेव को हविष्यान्न द्वारा प्रसन्न करते हैं। उस प्रजापति देवता का हम हविष्यान्न द्वारा पूजन करें।

व्याकरण – **जनयन्तीः** = जन् धातु+णिच्+शतृ+ङीप्, प्रथमा विभक्ति, बहुवचन का वैदिक रूप। लौकिक संस्कृत में 'जनयन्त्यः' रूप बनता है। **आयन्** = 'इण् गतौ' धातु, लङ् लकार (स्त्रीलिंग) प्रथम पुरुष, बहुवचन।

विशेष – सृष्टि के आदिकाल में जब सर्वत्र विशाल जलराशि फैली हुई थी। उस समय भी हिरण्यगर्भ प्रजापति विद्यमान था।

यश्चिदापो महिना पर्यपश्यद् दक्षं दधाना जनयन्तीर्यज्ञम्।
यो देवेष्वधिदेव एक आसीत् कस्मै देवाय हविषा विधेम।।8।।

अन्वय – यः चित् यज्ञं जनयन्ती, दक्षं दधानाः, आपः महिना पर्यपश्यत्। यः देवेषु एकः अधिदेवः आसीत्। कस्मै देवाय हविषा विधेम।

शब्दार्थ – यः = जिस प्रजापति ने, चित् = एकाकी ही, यज्ञं = यज्ञात्मक कर्म को, जनयन्ती = उत्पन्न करती हुई, दक्षं = चातुर्य/प्रजापति को, दधाना = धारण करती हुई, आपः = जल, महिना = महत्त्व से, पर्यपश्यत् = चारों ओर देखा, यः = जो प्रजापति, देवेषु = देवताओं के मध्य, अधिदेवः = सर्वोपरि विराजमान होता हुआ, आसीत् = था, कस्मै देवाय = उस प्रजापति नामक देवता के लिए, हविषा = हविष्यान्न द्वारा, विधेम = (हम) प्रस्तुत प्रसन्न करते हैं।

अनुवाद – जिसने यज्ञ को उत्पन्न करने वाले, प्रजापति को धारण करने वाले जलों को अपने माहात्म्य से परिपूर्ण रूप में देखा, जो देवताओं का स्वयं अधीश्वर है। उस प्रजापति देवता का हम हविष्यान्न द्वारा पूजन करें।

व्याकरण – **दधानाः** = धा धातु+शानच्, स्त्रीलिंग द्वितीया विभक्ति बहुवचन।

विशेष – प्रजापति के वैशिष्ट्य का वर्णन किया गया है।

मा नो हिंसीज्जनिता यः पृथिव्या यो वा दिवं सत्यधर्मा जजान।
यश्चापश्चन्द्रा बृहतीर्जजान कस्मै देवाय हविषा विधेम।। 9।।

अन्वय – नः मा हिंसीत् यः पृथिव्याः जनिता, यः वा सत्यधर्मा दिवं जजान, सः चन्द्राः बृहतीः आपः जजान, कस्मै देवाय हविषा विधेम।

शब्दार्थ – मा = नहीं, नः = हमको, हिंसीत् = मारे, यः = जो कि, पृथिव्याः = पृथ्वी का, जनिता = उत्पन्न करने वाला, वा = अथवा, सत्याधर्मा = नियमों को धारण करते हुए, जजान = उत्पन्न किया है, दिवं = स्वर्ग को, यः च = और जिसने, चन्द्रा = आनन्ददायक, बृहती = महान्, आपः =जलराशि को, कस्मै देवाय = उस प्रजापति नामक देवता के लिए, हविषा = हविष्यान्न द्वारा, विधेम = (हम) प्रस्तुत प्रसन्न करते हैं।

अनुवाद – वह हिरण्यगर्भ प्रजापति हमारी हिंसा न करें जो पृथ्वी लोक को उत्पन्न करने वाला है, सत्यधर्मा जिसने द्युलोक को उत्पन्न किया है, जिसने आनन्द प्रदान

करने वाले महान् जलराशि को उत्पन्न किया है कः नाम वाले उस प्रजापति देवता का हम हविष्यान्न द्वारा पूजन करें।

व्याकरण – **जनिता** = जन् धातु+णिच्+तृच् का पुंल्लिंग, प्रथमा एकवचन का वैदिक रूप।

विशेष – **प्रजापति** = सृष्टि का रचयिता है।

प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो विश्वा जातानि परि ता बभूव।
यत् कामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्तु वयं स्याम पतयो रयीणाम्।।10।।

अन्वय – प्रजापते त्वत् अन्यः एतानि विश्वा जातानि ता न परिबभूव। यत् कामाः ते जुहुमः तत् नः अस्तु। वयम् रयीणाम् पतयः स्याम।

शब्दार्थ – विश्वा जातानि = सम्पूर्ण उत्पन्न हुए पदार्थों का, परिबभूव = व्याप्त किए हुए है, यत्कामाः = जिस फल की कामना करते हुए, जुहुमः = आहुति देते है, नः = हमें, अस्तु = हो, रयीणाम् = धनों के, पतयः = स्वामी, स्याम = हो।

अनुवाद – हे प्रजापति, आपके अतिरिक्त कोई दूसरा इन वर्तमान सभी उत्पन्न पदार्थों को व्याप्त नहीं कर सकता है। हम जिस कामना से युक्त होकर तुम्हें हवि प्रदान करते हैं, हमारी वह कामना पूर्ण हो तथा हम लोग धनों के स्वामी हो जायें।

व्याकरण – **विश्वा** = यह वैदिक रूप है। लोक में विश्वानि बनता है।

विशेष – **वयं स्याम पतयो रयीणाम्** = वेद में सभी दीर्घायु, धनवान् एवं पुत्रवान् हों, एवंविध प्रार्थना अनेकत्र की गई है।

12.4 विष्णु सूक्त (ऋग्वेद 1.154)

ऋषि – दीर्घतमा, देवता – विष्णु।
विष्णोर्नु कं वीर्याणि प्रवोचं यः पार्थिवानि विममे रजांसि।
यो अस्कभायदुत्तरं सधस्थं विचक्रमाणस्त्रेधोरुगायः।। 1।।

अन्वय – विष्णोः नु कं वीर्याणि प्रवोचं, यः पार्थिवानि रजांसि विममे, यःत्रेधा विचक्रमाणः उरुगायःउत्तरं सधस्थं अस्कभायत्।

शब्दार्थ – **विष्णोः** = विष्णु के,**वीर्याणि** = पराक्रम का,**नुकम्** = शीघ्र,**प्रवोचम्** = वर्णन करता हूँ, **त्रेधा** = तीन प्रकार से,**विचक्रमाणः** = विचरण करते हुए, **यः** = जिसने,**पार्थिवानि** = पृथिवी आदि, **रजांसि** = लोकों का, **विममे** = निर्माण किया/बनाया,**उरुगायः** = जनसमूह द्वारा प्रशंसित, **यः** = जिस (विष्णु)ने, **उत्तरम्**= अधिक ऊँचे, **सधस्थम्** = लोकों का,**अस्कभायत्**= बनाया है।

अनुवाद – मैं विष्णु के पराक्रम का शीघ्र वर्णन करता हूँ। तीन प्रकार से विचरण करते हुए जिस विष्णु नेपृथ्वी आदि लोकों का निर्माण किया/मापा है, जनसमूह द्वारा प्रशंसित जिस विष्णु ने अधिक ऊँचे लोकों को बनाया है।

व्याकरण – **विष्णोः** = 'विष्लृ व्याप्तौ' धातु से विष्+नु विष्णु, षष्ठी विभक्ति, **प्रवोचम्** = प्र+वच् धातु लङ् लकार, उत्तम पुरुष, एकवचन, **अस्कभायत्** = 'स्कम्भ' धातु लङ्

लकार, प्रथम पुरुष, एकवचन। यहाँ 'श्ना' को वैदिक ''शायच्'आदेश हुआ लोक में 'अस्कभ्नात्' रूप होगा।

विशेष – छन्द की पूर्ति के लिए 'वीर्याणि' का 'वीरियाणि' एवं 'त्रेधा' का 'त्रयेधा' उच्चारण करना चाहिए।

प्र तद् विष्णुः स्तवते वीर्येण मृगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठाः।
यस्योरुषु त्रिषु विक्रमणेष्वधिक्षियन्ति भुवनानि विश्वा ।। 2।।

अन्वय – यस्य उरुषु त्रिषु विक्रमणेषु विश्वा भुवनानि अधिक्षियन्ति तत् विष्णुः वीर्येण प्रस्तवते, भीमः कुचरः गिरिष्ठाः मृगः न।

शब्दार्थ – **यस्य** = जिसके, **उरुषु** = विस्तीर्ण/बड़े, **त्रिषु** = तीन, **विक्रमणेषु** = पाद विन्यासों, **विश्वा** = सम्पूर्ण, **भुवनानि** = लोक, **अधिक्षियन्ति** = निवास करते हैं, **तत्** = वह (विष्णु), **वीर्येण** = स्वपराक्रम के कारण, **प्रस्तवते** = प्रशंसा किया जाता है, **भीमः** = भयानक, **कुचरः**= कुत्सित/हिंसक कार्यकर्त्ता, **गिरिष्ठाः** = पर्वतों में रहने वाला, **मृगः** = सिंह, **न**= जैसे।

अनुवाद – जिस विष्णु के विस्तीर्ण लम्बे तीन पदक्रमों में सम्पूर्ण लोक आ जाते हैं/ आश्रय लेकर निवास करते हैं। उस विष्णु की वीर कार्यों से स्तुति उसी प्रकार की जाती है, जिस प्रकार भयानक, कुत्सित, हिंसा आदिकर्म करने वाले, पर्वतादि उन्नत प्रदेशों में रहने वाले सिंहादि की स्तुति की जाती है।

व्याकरण – **स्तवते** ='स्तु' धातु से कर्म कारक में लट् लकार, प्रथम पुरुष, एकवचन, **विश्वा** = प्रथमा विभक्ति, बहुवचन। लोक में 'विश्वानि' रूप बनता है।

विशेष – सायण के मतानुसार गिरिष्ठाः का अर्थ उन्नत प्रदेश में रहने वाला है।

प्र विष्णवे शूषमेतु मन्म गिरिक्षित उरुगायाय वृष्णे।
य इदं दीर्घं प्रयतं सधस्थमेको विममे त्रिभिरित् पदेभिः ।।3।।

अन्वय – गिरिक्षते उरुगायाय वृष्णे विष्णवे शूषम् मन्म एतु, यः एकः इत् त्रिभिः पदेभिः इदं दीर्घं प्रयतं सधस्थं विममे।

शब्दार्थ – **गिरिक्षिते** = पर्वत पर निवास करने वाले, **उरुगायाय** = विस्तृत कीर्ति वाले, **वृष्णे**= कामनाओं के वर्षक, **विष्णवे** = सर्वव्यापक विष्णु के लिए, **शूषम्** = बलयुक्त, **मन्म** = स्तोत्र, **एतु** = पहुँचे, **यः** = जिसने, **एकः** = अकेले, **इत्** = ही, **त्रिभिः** = तीन, **पदेभिः** = पदों के द्वारा, **इदं दीर्घं** = इस विस्तृत, **प्रयतं** = निश्चित, **सधस्थम्** = लोकत्रयी को, **विममे** = बनाया।

अनुवाद – पर्वत पर निवास करने वाले, विस्तृत कीर्तियुक्त, कामनाओं के पूरक, सर्वव्यापक (विष्णु) के लिए मेरी बलवती प्रार्थना पहुँचे, जिसने बिना किसी की सहायता के अकेले ही तीन पदों में इस विस्तृत त्रिलोक को बनाया/त्रिलोक को तीन पादन्यास से माप लिया था।

व्याकरण – **एतु** = इण् धातु लोट् प्रथम पुरुष, एकवचन, **विममे** = वि+मा लिट् लकार, प्रथम पुरुष, एकवचन।

विशेष – ऋषि विश्वस्त है कि उसकी प्रार्थना सर्वव्यापक विष्णु के पास पहुँचती है।

नासदीय (10.129),
हिरण्यगर्भ (10.121),
विष्णु (1.154),
सांमनस्य (3.30)

यस्य त्री पूर्णा मधुना पदान्यक्षीयमाणा स्वधया मदन्ति।
य उ त्रिधातु पृथिवीमुत द्यामेको दाधार भुवनानि विश्वा।।4।।

अन्वय – अक्षीयमाणाः यस्य मधुना पदानि स्वधया मदन्ति यः एकः त्रिधातु पृथिवी उत द्यां विश्व भुवनानि च दाधार।

शब्दार्थ – **यस्य** = जिस विष्णु के, **मधुना** = मधुर अमृत से, **पूर्णा** = भरे हुए, **त्रि पदानि** = तीन पद, **अक्षीयमाणा** = क्षीण न होते हुए, **स्वधया** = अन्न के द्वारा, **मदन्ति** = आनन्दित करते हैं, **यः एकः** = जिस अकेले ने ही, **द्यां** = द्युलोक को, **त्रिधातु** = तीन धातुओं, **दाधार** = धारण करता है।

अनुवाद – जिसके अक्षय मधुपूर्ण तीन पाद प्रक्रम मनुष्यों को अपनी शक्ति से आनन्दित करते हैं। जो अकेले ही पृथिवी, जल और तेज रूप तीन धातुओं पृथिवी, आकाश और सम्पूर्ण लोकों को धारण करते हैं (उस विष्णु के पास मेरी प्रार्थना पहुँचे)।

व्याकरण – **अक्षीयमाणा** = अ+क्षी+शानच्, **दाधार** = धृ+लङ् प्रथम पुरुष एकवचन।

विशेष – विष्णु विस्तीर्ण, व्यापक तथा अप्रतिहत गतिवाले हैं।

तदस्य प्रियमभि पाथो अश्यां नरो यत्र देवयवो मदन्ति।
उरुक्रमस्य स हि बन्धुरित्था विष्णोः पदे परमे मध्व उत्सः।।5।।

अन्वय – अस्य प्रियं तत्पाथः अभि अश्याम्, यत्र देवयवः नरः मदन्ति। उरुक्रमस्य विष्णोः परमे पदे मध्व उत्सः, इत्था स हि बन्धुः।

शब्दार्थ – **अस्य** = इस विष्णु के, **तत्पाथः** = उस लोक को, **अभि अश्याम्** = प्राप्त करूँ, **देवयवः** = विष्णु देवता के भक्त, **मदन्ति** = आनन्दपूर्वक रहते हैं, **उरुक्रमस्य** = परम पराक्रम वाले, **परमे पदे** = परम पद में, लोक में, **मध्व**= मधु का, **उत्सः** = झरना, **इत्था** = इस प्रकार, **बन्धुः** = भाई है।

अनुवाद – इस विष्णु के उस प्रिय लोक को प्राप्त करूँ, जहाँ पर देवताओं के इच्छुक मनुष्य आनन्द करते हैं। विशाल गति वाले विष्णु के श्रेष्ठ लोक में एक मधु का सरोवर है। इस प्रकार निश्चित ही वह सबका मित्र है।

व्याकरण – **देवयवः** = देवयु का प्रथमा विभक्ति बहुवचन।

विशेष – विष्णु के तृतीय पद/स्वर्ग में जहाँ पर पितृगण यज्ञ के साथ सोम रस का पान करते है।

ता वां वास्तून्युश्मसि गमध्यै, यत्र गावो भूरिश्रृङ्गा अयासः।
अत्राह तदुरुगायस्य वृष्णः परमं पदमव भाति भूरि।।6।।

अन्वय – यत्र भूरिश्रृङ्गाः गावः अयासः, वाम् ता वास्तूनि गमध्यै उश्मसि। अत्र आह उरुगायस्य वृष्णः तत् परमम् पदम् भूरि अव भाति।

शब्दार्थ – **भूरिश्रृङ्गाः** = बड़े ऊँचे सींगों वाली, **गावः** = गायें/किरणें, **अयासः** = निवास करती हैं, **वां** = तुम्हारे लिए, **तां वास्तूनि** = उन स्थानों को, **गमध्यै** = जाने के लिए, **उश्मसि** = माना करते हैं, **अत्र** = यहाँ, **आह** = निश्चय से, **उरुगायस्य** =

अति यशस्वी, **वृष्णः** = कामनाओं के दाता, भूरि = अत्यधिक, **अवभाति** = सुशोभित है।

अनुवाद – हम तुम्हारे लिए उन स्थानों को जाने की कामना करते हैं जहाँ अति भास्वर किरणें फैली हुई हैं। इस स्थान में ही अतियशस्वी विष्णु जो कि कामनाओं के दाता हैं, का वह परम पद सुशोभित है।

व्याकरण – **गमध्यै** = गम् धातु से 'तुमुन्' प्रत्यय, वैदिक 'अध्यैन्' प्रत्यय, **अयास** = 'इण् गतौ' धातु अच्-अय प्रत्यय, प्रथमा विभक्ति, बहुवचन का वैदिक रूप।

विशेष – विष्णु के परम पद में पहुँचने की कामना की है।

12.5 सांमनस्य सूक्त (अथर्ववेद 3.30)

ऋषि – अथर्वा, देवता – सामनस्य।
सहृदयं सांमनस्यमविद्वेषं कृणोमि वः।
अन्यो अन्यमभिहर्यत वत्सं जातमिवाघ्न्या।।1।।

अन्वय – (हे विवदमानाः जनाः) वः अविद्वेषं सांमनस्यं सहृदयं कृणोमि। (ततो यूयमपि) जातं वत्सम् अघ्न्या इव अन्योऽन्यं अभि हर्यत।

शब्दार्थ – **सहृदयम्** = समान हृदय वाला, **सांमनस्यम्** = समान मन वाला, **अविद्वेषं** = द्वेषरहित, **कृणोमि** = बनाता हूँ, **वः** = तुम लोगों को, **अन्यः** = एक, **अन्यम्** = दूसरे को, **अभि हर्यत** = प्रेम करो, **वत्सम्** = बछड़े को, **जातमिव** = जिस प्रकार उत्पन्न हुये को, **अघ्न्या** = अवध्या गाय।

अनुवाद – (हे विवाद करने वाले मनुष्यों,) तुम लोगों को समान हृदय वाला, समान मनवाला तथा द्वेष से रहित बनाता हूँ। एक दूसरे से प्रेम करो, जिस प्रकार गाय उत्पन्न बछड़े को (प्यार करती है)।

व्याकरण – **सांमनस्यम्** = सहृदय समान हृदय से युक्त, **अघ्न्या** = हन्तुम् अयोग्या, गाय।

विशेष – मनुष्यों को परस्पर प्रेम करने का निर्देश है, जैसे गाय अपने बछड़े से व्यवहार करती है तद्वत्।

अनुव्रतः पितुः पुत्रो मात्रा भवतु संमनाः।
जाया पत्ये मधुवतीं वाचं वदतु शन्तिवाम्।।2।।

अन्वय – पुत्रः पितुः अनुव्रतः, माता च संमनाः भवतु। पत्ये जाया मधुमतीं शन्तिवां वाचं वदतु।

शब्दार्थ – **अनुव्रतः** = आज्ञापालक, **पितुः** = पिता का, **पुत्रः** = पुत्र, **माता** = माता, **भवतु** = हो, **संमनाः** = एक मनवाली, **जाया** = पत्नी, **पत्ये** = पति के लिये, **मधुमतीम्** = मीठी, **वाचम्** = वाणी, **वदतु** = बोले, **शन्तिवाम्** = कल्याणकारी/सुखकरी।

अनुवाद – पुत्र पिता का आज्ञापालक हो, माता (पुत्रादिकों के साथ) एक मनवाली हो। पत्नी पति के लिये मीठी तथा कल्याणकारी वाणी बोले।

नासदीय (10.129), हिरण्यगर्भ (10.121), विष्णु (1.154), सांमनस्य (3.30)

व्याकरण – **पत्ये** = पतिः समास एव इत्यनेन घि संज्ञाया नियमात् केवलस्य अभावात् तत्कार्याभावे यण्।

विशेष – परिवार में सदस्य किस प्रकार वाग्व्यवहार करें, का निर्देश प्राप्त होता है।

मा भ्राता भ्रातरं द्विक्षन्मा स्वसारमुत स्वसा।

सम्यंचः सव्रता भूत्वा वाचं वदत भद्रया।।3।।

अन्वय – भ्राता भ्रातरं मा द्विक्षत्। उत स्वसारं स्वसा मा द्विक्षत्। (ते सर्वे) सम्यंचः सव्रताः भूत्वा भद्रया वाचं वदतु।

शब्दार्थ – **मा** = मत, **भ्राता** = भाई, **भ्रातरम्** = भाई से, **द्विक्षत्** = द्वेष करे, **मा** = मत, **स्वसारम्** = बहन को, **उत** = और, **स्वसा** = बहन, **सम्यंचः** = समान गति वाले, **सव्रताः** = समान कार्य वाले, **भूत्वा** = होकर, **वाचम्** = वाणी, **वदत** = बोलो, **भद्रया** = शिष्टता से।

अनुवाद – भाई-भाई से द्वेष न करे, बहन-बहन से न (द्वेष करे), समान गति वाले तथा समान कार्य वाले होकर (तुम लोग) शिष्टता से वचन बोलो।

व्याकरण – **वदतु** = यहाँ व्यत्यय से एकवचन प्राप्त हुआ है।

विशेष – भ्राता एवं भगिनी को भी मधुर व्यवहार करने का निर्देश प्राप्त होता है।

येन देवा न वियन्ति नो च विद्विषते मिथः।
तत् कृण्मो ब्रह्म वो गृहे संज्ञानं पुरुषेभ्यः।।4।।

अन्वय – येन देवाः न वियन्ति, नो च मिथः विद्विषते। तत् संज्ञानम् ब्रह्म वः गृहे पुरुषेभ्यः कृण्मः।

शब्दार्थ – **येन** = जिससे, **देवाः** = देवता, **न** = नहीं, **वियन्ति** = अलग होते हैं, **नो** = न तो, **च** = और, **विद्विषते** = द्वेष करते हैं, **मिथः** =परस्पर, **तत्** = उस, **कृण्मः** = करते हैं, **ब्रह्म** = प्रार्थना, **वः** = तुम्हारे, **गृहे** = घर पर, **संज्ञानम्** = समान ज्ञान अर्थात् सामंजस्य के निमित्त, **पुरुषेभ्यः** = मनुष्यों के लिये।

अनुवाद – जिससे देवता अलग नहीं जाते और न तो परस्पर द्वेष ही करते हैं, तुम्हारे घर पर (तुम्हारे) मनुष्यों के लिये उस सामंजस्य के निमित्त (हम) प्रार्थना करते हैं।

व्याकरण – **गृहे पुरुषेभ्यः** = यहाँ तादर्थ्य में चतुर्थी प्राप्त हुई है।

विशेष – घर के पुरुषों में एकमति सम्पादन का निर्देश प्राप्त होता है।

ज्यायस्वन्तश्चित्तिनो मा वि यौष्ट संराधयन्तः सधुराश्चरन्तः।
अन्यो अन्यस्मै वल्गु वदन्त एत सध्रीचीनान् वः संमनसस्कृणोमि।।5।।

अन्वय – ज्यायास्वन्तः चित्तिनः संराधयन्तः सधुराः चरन्तः (यूयम्) मा वि यौष्ट। अन्यः अन्यस्मै वल्गु वदन्तः ऐत (आ+इत)। (हे जनाः) वः सध्रीचीनान् संमनसः कृणोमि।

शब्दार्थ – **ज्यायास्वन्तः** = श्रेष्ठ गुणों से युक्त, **चित्तिनः** = समान अन्तःकरण वाले, **मा** = मत **वि यौष्ट** = अलग होओ, **संराधयन्तः** = एकसाथ साधना करते हुये, **सधुराः** = कंधा मिलाकर, **चरन्तः** = चलते हुये, **अन्यः** = एक, **अन्यस्मै** = दूसरे के लिए, **वल्गु** = प्रियवचन, **वदन्तः** = बोलते हुये, **आ इत** = यहाँ आओ, **सध्रीचीनान्**

= एकसाथ चलने वाला अर्थात् एकसाथ कार्य में प्रवृत्त होने वाला, **वः** = तुम लोगों को, **संमनसः** = समान मन वाला, **कृणोमि** = बनाता हूँ।

अनुवाद – श्रेष्ठ गुणों से युक्त, समान चित्त वाले, एक साथ साधना करते हुये, कंधे से कंधा मिलाकर चलते हुये, (तुम लोग) वियुक्त मत होओ। परस्पर प्रिय वचन बोलते हुये आओ। मैं तुम लोगों को एक कार्य में प्रवृत्त होने वाला तथा समान मन वाला बनाता हूँ।

व्याकरण – **सध्रीचीनान्** = सह अंचतीति विगृह्य अंचतेः ऋत्विग्० सूत्र से क्विन्। सहस्य सध्रिः सूत्र से सध्र्यादेश।

विशेष – सभी छोटे बड़े का ध्यानपूर्वक व्यवहार हो, सभी प्रिय बोलें तथा कभी अलग न हों, एक साथ रहें।

समानी प्रपा सह वोऽन्नभागः समाने योक्त्रे सह वो युनज्मि।
समयञ्चोऽग्निं सपर्यतारा नाभिमिवाभितः।।6।।

अन्वय – वः समानी प्रपा (भवतु) अन्नभागः सह एव युनज्मि। अहं वः समाने योक्त्रे सह युनज्मि। अपि च सम्यंचः सन्तः अग्निं सपर्यत। (कथमिव) अरा नाभिमिव अभितः।

शब्दार्थ – **समानी** = एक, **प्रपा** = पानीशाला, **सह** = एकसाथ, **वः** = तुम लोगों का, **अन्नभागः** = भोजन, **समाने** = समान, **योक्त्रे** = बंधन में, **सह** = एकसाथ, **वः** = तुम लोगों को, **युनज्मि** = बांधता हूँ, **सम्यंचः** = एकसाथ होकर, **अग्निम्** = अग्नि की, **सपर्यत** = उपासना करो, **अराः** = पहिये की तीलियां, **नाभिमिव** = जिस प्रकार धुरे को, **अभितः** = चारों तरफ से घेरकर स्थित रहती हैं।

अनुवाद – तुम लोगों की पानीशाला एक हो, भोजन एक साथ हो, तुम लोगों को समान बन्धन में बांधता हूँ। एकसाथ होकर अग्नि की उपासना करो, जिस प्रकार चक्र की तीलियां धुरे के चारों तरफ स्थित रहती हैं।

व्याकरण – **नाभिम्** = अरा रथचक्रस्य छिद्रं नाभिः, अभितः परितः० सूत्र से द्वितीया।

विशेष – परस्पर सौहार्द्र धारण करने का निर्देश प्राप्त होता है।

सध्रीचीनान् वः संमनसस्कृणोम्येकश्नुष्टीन्त्संवननेन सर्वान्।
देवा इवामृतं रक्षमाणाः सायंप्रातः सौमनसो वो अस्तु।।7।।

अन्वय – सध्रीचीनान् संमनसः वः कृणोमि। तथा वः एकश्नुष्टीन् संवननेन सर्वान्। यथा अमृतम् रक्षमाणाः देवाः सौमनसः (भवन्ति), एवं वः सायं प्रातः (काले) सौमनसः (अस्तु)।

शब्दार्थ – **सध्रीचीनान्** = एकसाथ जाने वाला, **वः** = तुम लोगों को, **संमनसः** = एक मन वाला, **कृणोमि** = बनाता हूँ, **एकश्नुश्टीम्** = एकसाथ भोजन करने वाला, **संवननेन** = वशीकरण मन्त्र से, **सर्वान्** = सबको, **देवा इव** = देवों की तरह, **अमृतम्** = अमृत की, **रक्षमाणाः** = रक्षा करते हुये, **सायंप्रातः** = शाम तथा सुबह अर्थात् प्रत्येक क्षण, **सौमनसः** = एक समान मन, **वः** = तुम लोगों का, **अस्तु** = हो।

अनुवाद – तुम लोगों को एकसाथ जाने वाला तथा एक मन वाला बनाता हूँ। अमृत की रक्षा करते हुये देवों की तरह, प्रत्येक क्षण तुम लोगों का मन एकसाथ रहे।

व्याकरण – **एकश्नुष्टिम्** = एकविध व्यापन।

विशेष – सभी के मानस व्यवहार में एकरूपता का निर्देश प्राप्त होता है।

नासदीय (10.129), हिरण्यगर्भ (10.121), विष्णु (1.154), सांमनस्य (3.30)

12.6 सारांश

ऋग्वेद में वर्णित नासदीय सूक्त सृष्टि रचना विवरण का प्राचीनतम स्रोत है। सृष्टि रचना से पूर्व सत् असत् गुणों की सत्ता नहीं थी, पृथिवी, पाताल एवं अन्तरिक्ष भी नहीं थे। अमृत तथा मृत्यु का अभाव था। सर्वत्र जलमय था। ईश्वर के मन में इच्छा का उदय हुआ तथा उसी का परिणाम सृष्टि की उत्पत्ति थी। सृष्टि रचना ईश्वरीय क्रिया थी, जो अन्य के लिए अज्ञेय है।

सुवर्णमय अण्डाकार (हिरण्यगर्भ) से प्रजापति की उत्पत्ति हुई। प्रजापति ने धरती तथा आकाश को धारण किया। प्रजापति ही सृष्टि में प्राण एवं बल का प्रदाता बना, उसकी आज्ञा सभी मानते थे, चर-अचर की उत्पत्ति का नियामक वही था। वह पर्वतों एवं लोकों का रचयिता था, वह पंचतत्त्वों का भी जनक था तथा उसका एक नाम **क** (प्रजापति) कहा गया है।

विष्णु ने तीन पदों से पृथिवी, पाताल एवं अन्तरिक्ष को मापा तथा लोकों का निर्माण किया, वह स्तुति के योग्य है। वह लोकों को धारण करने वाला है। वह सभी का मित्र है एवं यशस्वी है।

सांमनस्य सूक्त में मानव समाज में परस्पर एकता तथा स्नेह का व्यवहार करने का निर्देश है। वह प्रेम ऐसा हो, जैसे एक गाय अपने बछड़े से प्यार करती है। पुत्र-पिता, पुत्र-माता तथा पति-पत्नी में प्रेम हो। भाई-भाई से तथा बहन-बहन से प्रेम करे। सभी एकसाथ भोजन करें तथा सभी का मन एक हो।

12.7 शब्दावली

परवर्ती – बाद वाला/अनन्तर

प्रभुत्व – प्रभाव/शासन

मानुषी – मनुष्य से उत्पन्न/सम्बन्धी

हविष्यान्न – हवि के रूप में प्रयुक्त किया जाने वाला अन्न

अनेकत्र – बहुत से स्थलों/स्थानों पर

पादन्यास – पैर का रखना/स्थापित करना

अप्रतिहत – लगातार/निरन्तर

वाग्व्यवहार – वाणी का व्यवहार

एकमति – एक मन/विचार

सौहार्द्र – सुहृद् मित्रवत् व्यवहार/प्रेम/भाव

एकविध – एक प्रकार

12.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. **द न्यू वैदिक सिलेक्शन** प्रथम एवं द्वितीय भाग, तैलंग एवं चौबे, भारतीय विद्या प्रकाशन, वाराणसी।

2. **ऋग्वेद संहिता,** सायण भाष्य, राष्ट्रियसंस्कृतसंस्थानम्, नई दिल्ली।
3. **अथर्ववेद संहिता,** सायण भाष्य, विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान, होशियारपुर।

12.9 अभ्यास प्रश्न

1. नासदीय सूक्त के आधार पर सृष्टि उत्पत्ति की पूर्वावस्था का वर्णन कीजिए।
2. नासदीय सूक्त के आधार पर सृष्ट्युत्पत्ति प्रक्रिया पर प्रकाश डालिए।
3. ''**तम आसीत् तमसा गूळहमग्रेऽप्रकेतं सलिलं सर्वमा इदम्।**

   तुच्छ्येनाभ्वपिहितं यदासीत्तपसस्तन्महिनाजायतैकम्।।'' मन्त्र की ससन्दर्भ व्याख्या कीजिए।
4. हिरण्यगर्भ सूक्त के आधार पर प्रजापति के स्वरूप का वर्णन कीजिए।
5. विष्णु सूक्त के आधार पर विष्णु देवता के मुख्य कर्मों का प्रतिपादन कीजिए।
6. ''**ता वां वास्तून्युश्मसि गमध्यै, यत्र गावो भूरिशृङ्गा अयासः।**

   अत्राह तदुरुगायस्य वृष्णः परमं पदमव भाति भूरि।।'' मन्त्र की ससन्दर्भ व्याख्या कीजिए।
7. सांमनस्य सूक्त के आधार पर परिवार की कल्पना सुस्पष्ट कीजिए।

इकाई 13 वैदिक देवताओं का स्वरूप

इकाई की रूपरेखा

13.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप –

- ऋग्वेद में उल्लिखित प्रमुख देवताओं के विषय में ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।
- देवताओं के स्वरूप एवं कर्मों को ससन्दर्भ समझ सकेंगे।
- प्रकृति के देवत्व भाव की अनुभूति कर सकेंगे।
- प्रत्येक देवता के अपर देवता के रूप/कर्म प्रभृति के आधार पर वर्गीकरण कर सकेंगे।
- जन-सामान्य में देवता तत्त्व के सम्बन्ध में व्याप्त भ्रान्ति का निराकरण कर सकेंगे ं

13.1 प्रस्तावना

देवो दानात्, द्योतनात्, दीपनात् वा प्रकृत वचन के अनुसार देवता शब्द दानशीलता, द्युतिमत्ता एवं दीप्तिमत्ता का परिचायक है। वैदिक आर्यों ने प्रकृति को समझने के लिए भिन्न-भिन्न देवताओं की कल्पना की। वे यह विश्वास करते थे कि इनकी कृपा से ही समस्त कार्य संचालित होते हैं।

तिस्र एव देवता, निरुक्तकार ने देवता के मुख्यतः तीन प्रमुख विभाग पृथिवीस्थानीय, अन्तरिक्षस्थानीय एवं द्युस्थानीय के भेद से स्वीकार किये हैं। अन्य देवताओं की संज्ञा

एवं वर्गीकरण का अन्तर्भाव इन तीन के अन्तर्गत ही कर लेना चाहिए यतो हि ये स्थूलस्वरूप विषय के स्पष्टीकरण में अधिक सहायक होते हैं। अधुना इस प्रसंग में हम प्रमुख देवताओं के विषय में विस्तारपूर्वक अध्ययन करेंगे।

13.2 वैदिक देवताओं का स्वरूप

वैदिक साहित्य में प्राप्त सन्दर्भों के आधार पर प्रमुख देवताओं का क्रमशः विवरण अधोलिखित है –

13.2.1 अग्नि

अग्नि पृथिवीस्थानीय देवताओं में प्रमुख हैं। ऋग्वेद के 200 सूक्तों में अग्नि की स्तुति है तथा कतिपय सूक्तों में अन्य देवताओं के साथ संयुक्त रूप से की गयी इनकी प्रार्थना भी है। इस प्रकार प्रभाव की दृष्टि से वैदिक देवताओं में इन्द्र के अनन्तर अग्नि का ही स्थान है। निरुक्त (7.14) में अग्नि के निर्वचन प्रसंग में कहा गया है – ये अग्रणी होते हैं, यज्ञों में सर्वप्रथम स्थापित किये जाते हैं (प्रणीयते)। जिस किसी पदार्थ को ये ग्रहण करते हैं, उसे अपना अङ्ग बना लेते हैं **(अङ्गं नयति संनममानः)**। स्थौलाष्ठीवि आचार्य का मत है कि जो स्निग्ध नहीं करता (नक्नोपयति–ऩञ्+क्नू धातु) वही अग्नि है। अतः अग्नि का कार्य किसी भी वस्तु को शुष्क कर देना है। आचार्य शाकपूणि **अग्नि** का निर्वचन तीन आख्यातों से करते हैं– इ धातु (गमनार्थक) से अ वर्ण, अञ् (प्रकाशित करना) अथवा दह् (जलाना, दग्ध) से ग वर्ण और नी (ले जाना) से नि की व्याख्या की जा सकती है।

निरुक्त में यास्क ने अग्नि से सम्बद्ध पदार्थों में (अग्निभक्तीनि) पृथिवीलोक, प्रातःसवन, वसन्त ऋतु, गायत्री छन्द, त्रिवृत् स्तोम, रथन्तर साम एवं पृथ्वीलोक में अवस्थित देवगण, ये निर्दिष्ट किये हैं। अग्नायी, पृथिवी और इष्टा– ये तीन देवियाँ भी अग्नि सम्बद्ध हैं। अग्नि के तीन प्रमुख कर्म है– हव्य पदार्थ को देवताओं तक पहुँचाना, देवताओं को यज्ञ में बुलाकर लाना तथा दृष्टिविषयक प्रकाशादि कर्म। अग्नि के साथ प्रायः इन्द्र, सोम, वरुण, पर्जन्य तथा ऋतुओं की स्तुति देखी जाती है।

ऋग्वेद में अग्नि के त्रिविध जन्म का वर्णन प्राप्त होता है। प्रथम जन्म यज्ञ में दो अरणियों से होता है। ये अरणियाँ (यज्ञ में अग्नि को उत्पन्न करने वाले दो काष्ठ खण्ड) अग्नि के माता-पिता हैं, जिन्हें वे जन्म के साथ ही खा जाते हैं **(जायमानो गर्भो अत्ति, ऋग्वेद 10.79.4)**। दस अंगुलियाँ अरणि मन्थन करती हैं, वे अग्नि भी अग्नि की माताएँ कही गयी हैं। इस कार्य में शक्ति लगती है। अतः अग्नि ऊर्जोनपात् तथा **सहसस्पुत्रः** (शक्ति के पुत्र) भी कहे गये हैं। प्रतिदिन उत्पन्न होने वाले अग्निदेव युवा और **यज्ञियानां प्रथमः** (प्राचीनतम) भी हैं। यह अग्नि का पार्थिव रूप है।

अग्नि का द्वितीय जन्म **अन्तरिक्षस्थ जल** से होता है। यह वैद्युताग्नि है। अतएव कतिपय सूक्तों में अग्नि को **अपांनपात्** भी कहा गया है। वस्तुतः मेघों के गर्भ में विद्यमान विद्युत्-रूप अग्नि ही अपांनपात् है।

अग्नि का तृतीय **जन्म द्युलोक** में होता है। पृथ्वी पर इस उत्तम अग्नि को मातरिश्वा लाये– **स जायमानः परमे व्योमन्याविरग्निरभवन्मातरिश्वमे (ऋग्वेद 1.143.2)।** वेदों में अग्नि तथा मातरिश्वा के बीच कार्य-कारणभाव माना गया है। सूर्य को भी द्युस्थानीय अग्नि का ही रूप माना गया है।

यदा-कदा अग्नि को द्विजन्मा कहा गया है **(अयं स होता यो द्विजन्मा)।** क्योंकि पृथ्वी तथा द्युलोक में ब्रह्माण्ड का विभाग स्वीकार कर दोनों लोकों से अग्नि सम्बद्ध कहे गये हैं। यह धारणा भी है कि वे वर्षा में द्युलोक से उतरकर वनस्पतियों में प्रविष्ट हो जाते हैं, इनसे वे पुनः प्रकट होते हैं। अपने मानवीय रूप में अग्निदेव पुरोहित, यज्ञ के प्रमुख देवता, होता, ऋत्विक् तथा सर्वाधिक धनदाता है –

अग्निमीळे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम्। होतारं रत्नधातमम्।। (ऋग्वेद 1.1.1)

अग्नि प्रत्येक गृह में निवास करते हैं, अतः दमूनस् और गृहपति कहे गये हैं। वैदिक कर्मकाण्ड में गार्हपत्य, आहवनीय तथा दक्षिण नामक तीन प्रकार की अग्नियों का प्रयोग होता है। उनमें गार्हपत्याग्नि प्रमुख तथा मूल होता है। उसी से अन्य अग्नियों की उत्पत्ति होती है। अग्नि प्रत्येक घर के अतिथि हैं **(स दर्शत श्रीरतिथिर्गृहे गृहे)**। वे अपने उपासकों के भाई, पिता, पुत्र एवं माता भी हैं। अग्नि के अभाव में न कोई घर हो सकता है, न ही यज्ञ हो सकता है। देवताओं को लाना और यज्ञ में अर्पित हव्य को तत्तद् देवताओं तक पहुँचाना अग्नि का ही कार्य है। अतः अग्नि को दूत भी कहा गया है **(अग्निं दूतं वृणीमहे)**। वे देवताओं और पृथ्वी के बीच के मार्ग के ज्ञाता हैं। यज्ञों के मर्मज्ञ, ऋतुओं के ज्ञाता तथा विशिष्ट प्रज्ञा से समृद्ध **(कविक्रतुः)** अग्नि देवताओं के यज्ञ-विधानों से अपरिचित मनुष्यों की त्रुटियों को क्षमा कर देते हैं। अग्नि को जातवेदस् (सभी कुछ जानने वाला) कहा गया है। एवमेव उन्हें वैश्वानर (सभी मनुष्यों से सम्बद्ध) भी कहा गया है। यह अन्धकार के विनाशक, यज्ञ के प्रमुख सहायक एवं समस्त अनिष्ट तत्त्वों के विध्वंसक हैं। वनों पर आक्रमण करते हुए वे नापित के समान पृथ्वी को स्वच्छ करते हैं तत्समय उनका पथ अन्धकारपूर्ण होता है, धूम ऊपर उठता है **(धूमकेतुः)।** अपने स्तोता को वे गार्हस्थ्य के आनन्द, सन्तान तथा अभ्युदय से परिपूर्ण कर देते हैं। दो अरुण अश्व उनके उज्ज्वल रथ को खींचते हैं। काष्ठ और घृत इनके खाद्य पदार्थ हैं। घृत और सोम इनके पेय हैं। दिन में तीन बार भोजन करते हैं। ये देवताओं के मुख हैं। यज्ञ से ही विशेष सम्बन्ध के कारण इन्हें **घृतपृष्ठ, शोचिष्केश, रक्तश्मश्रु, तीक्ष्णदंष्ट्र एवं रुक्मदन्त** कहा गया है। ज्वाला अग्नि की जिह्वा है। पुरोहित अग्नि को सदा प्रज्ज्वलित रखते थे। अन्य देशों के पुरोहित भी भारत के समान अग्नि में दूसरे देवताओं के लिए हव्य देते थे।

13.2.2 इन्द्र

ऋक्संहिता के प्रायः 250 सूक्तों में इन्द्र की स्तुति है। अतएव ये प्रधान वैदिक देवता हैं। उनके विषय में आख्यान भी अन्य की तुलना में अधिक दृष्टिगोचर होते हैं। वैदिक आर्यों के नेता और महावीर के रूप में इन्द्र का स्वरूप मानवीय है। अनावृष्टि और अन्धकार के राक्षसों पर विजय प्राप्तकर जल का प्रवहण एवं प्रकाश का प्रसरण इन्द्र-सम्बद्ध गाथाओं में प्रमुख कार्य के रूप में परिगणित किये गये हैं। साथ ही प्रकारान्तर से ये युद्ध के देवता हैं तथा शत्रु विजय में नेतृत्व करते हैं।

निरुक्त (7.10) के अनुसार इन्द्र अन्तरिक्षस्थानीय देवताओं में श्रेष्ठ हैं। प्रमुखतया अन्तरिक्षलोक, ग्रीष्मऋतु, माध्यन्दिन सवन, त्रिष्टुप् छन्द, पंचदश स्तोम तथा बृहत् साम आदि का सम्बन्ध इनसे है। अग्नि, सोम, वरुण, पूषा, बृहस्पति, विष्णु, वायु प्रभृति देवताओं के साथ इन्द्र की स्तुति संयुक्त रूप से की जाती है। इन्द्र के 03 प्रमुख कर्म हैं– रसानुप्रदान (वृष्टि), वृत्रवध तथा शक्ति सम्बद्ध कार्य प्रकट करना **या च का च बलकृतिरिन्द्रकर्मैव तत्।** बृहद्देवता (2.6) से इन्द्र के चार कर्म स्पष्ट हैं –

रसादानं तु कर्मास्य, वृत्रस्य च निवर्हणम्।
स्तुतेः प्रभुत्वं सर्वस्य बलस्य निखिला कृतिः।।

इन्द्र का निर्वचन यास्क ने निरुक्त (10.8) में अनेक प्रकार से किया है, परिणामतः उनके अधिकाधिक पक्षों का प्रकाशन हो— **इन्द्रः इरां दृणातीति वा** (इरा/अन्न का विदारण करने वाला), **इरां ददातीति वा** (इरा का दान करने वाला), **इरां दधातीति वा** (इरा को धारण करने वाला), **इरां दारयति इति वा** (जो अन्न के विदारण को संचालित करे), **इरां धारयति इति वा** (जो अन्न को स्थापित करे), **इन्दवे द्रवतीति वा** (सोमरस पानार्थ दौड़ने वाला), **इन्दौ रमत इति वा** (इन्दु/सोमरस में आनन्द लेने वाला), **इन्धे भूतानीति** (समस्त प्राणियों में चैतन्यरूप में प्रविष्ट होकर प्रदीप्त करने वाला), **इदं करणादित्याग्रायणः** (आग्रायण मुनि के अनुसार इस जगत् को निर्मित करने वाला परमात्मा ही इन्द्र है), **इदं दर्शनादित्यौपमन्यवः** (औपमन्यव मुनि के अनुसार इस जगत् को देखने वाला परमात्मा ही इन्द्र है), **इन्दतेर्वा ऐश्वर्यकर्मणः** (ऐश्वर्य अर्थवाले इन्द् धातु से निष्पन्न होने से ऐश्वर्यवान् परमात्मा इन्द्र है), **इन्दन् शत्रूणां दारयति वा** (ऐश्वर्य प्रकट करते हुए शत्रुओं का विदारण करने वाला), **इन्दन् शत्रूणांद्रावयिता वा** (ऐश्वर्य दिखाकर शत्रुओं को खदेड़ने वाला), **आदरयिता वा यज्वनाम्** (यज्ञकर्त्ताओं को सम्मान देने वाला)। एवंविध एक ओर इन्द्र को परमात्मा/वृष्टिकर्ता के रूप में परिगणित किया जाता है।

जन्म से ही इन्द्र देवताओं के नेता हैं **(यो जात एव प्रथमो मनस्वान् देवो देवान् ऋतुना पर्यभूषत्)।** इन्द्र बलवान्, पराक्रमी, शुभ्र, सर्वविद्, अमित बुद्धिशाली तथा वज्र के प्रयोक्ता हैं। त्वष्टा द्वारा इन्द्र के वज्र का निर्माण किया गया, जिसमें एक सहस्र नोंकें हैं **(सहस्रभृष्टि)**। इन्द्र का रूप अत्यन्त सुन्दर एवं सूर्य की आभा से युक्त है। उनके केश, दाढ़ी, सम्पूर्ण शरीर हरिवर्ण (पीला) है। इन्द्र को स्वर्णमय कहा गया है **(इन्द्रो वज्री हिरण्ययः, ऋग्वेद 1.7.2)**। इन्द्र के विशेषणों में वज्र धारण तथा सोमपान का सर्वाधिक वर्णन प्राप्त होता है **(यः सोमपाः)**। इन्द्र का उदर सरोवर के समान है **(ह्रदा इव कुक्षयः मिधानाः)**। सोमपानानन्तर उनमें अनुपम शक्ति प्रसरित हो जाती है **(अस्य मदे अहिमन्द्रो जघान)**। अधिक सोमपान से उन्हें कष्ट होता है, ऐसी स्थिति में सौत्रामणि यज्ञ के द्वारा देवगण उन्हें रोगमुक्त कराते हैं।

इन्द्र के जन्म के विषय में अनेक आख्यान प्रसिद्ध हैं, यथा— देवताओं ने वृत्रों के नाशार्थ इन्द्र को उत्पन्न किया था **(धनं वृत्राणां जनयन्त देवाः)**। पुरुष सूक्त के अनुसार पुरुष के मुख से इन्द्र और अग्नि का जन्म हुआ था **(मुखादिन्द्रश्चाग्निश्च)**। ब्राह्मण-ग्रन्थों में प्रजापति से इन्द्र का जन्म बताया गया है। इन्द्राणी उनकी पत्नी है। अग्नि उनके जुड़वाँ भाई हैं। मरुद्गण उनके स्थायी सहयोगी, सभी युद्धों में साथ रहते हैं। इन्द्र के कार्यों में वृत्र-वध का सर्वाधिक उल्लेख प्राप्त होता है। वृत्र वस्तुतः एक काल्पनिक दैत्य है, जो मेघों में रहकर वृष्टि को रोककर रखता है। उसे अहि, शुष्ण, शम्बर, नमुचि, उरण, अप्सुजित् इत्यादि नामों से भी स्थापित किया गया है। इन्द्र उसे वज्र से मारकर जल का मोचन करते हैं। मेघों से आच्छन्न सूर्य भी मुक्त हो जाता है साथ ही अन्धकार दूर होकर प्रकाश छा जाता है। मेघों के गर्जन तथा विद्युत् स्फुरण के दृश्य को ऋग्वेद में इन्द्र वृत्र संग्राम के रूप में वर्णित किया गया है। युद्ध में इन्द्र के वज्र से वृत्र का वध हो जाता है, फलतः वृष्टि होने लगती है। यह दृश्य अनेक स्थानों पर युगपत् घटता है। अतएव यह कहा जाता है कि इन्द्र ने सैकड़ों सेनाओं को जीत लिया **(शतं सेना अजयत्साकमिन्द्रः, ऋग्वेद 10.103.1)**। वृत्र पर्वत पर निवास करता है। वेद में मेघों को पर्वत कहा गया है। इन्द्र उन पर्वतों का भेदनकर जल को

मुक्त कर देते हैं। जलमोचन की तुलना गोशाला/व्रज से गायों के खोले जाने से की गयी है। इन्द्र ने पणियों के बन्धन से आर्यों की गायों का उद्धार किया था। पणियों ने आर्यों की गायें चुराकर पर्वतों के बीच रख दी थीं। इन्द्र ने सरमा को दूती के रूप में भेजकर गायें लौटाने के लिए कहा किन्तु बात नहीं बनी। तब उन्होंने आक्रमण करके पणियों का नाश किया एवं गायें छुड़ा लीं।

13.2.3 सवितृ

वैदिक साहित्य के अनुसार सविता (सवितृ) द्युस्थानीय देवता है। ऋग्वेद में सविता की स्तुतिपरक 11 सम्पूर्ण सूक्त प्राप्त होते हैं। यद्यपि विविध सूक्तों में कतिपय मन्त्र प्राप्त होते हैं तथा इनका नाम प्रायः 170 बार निर्दिष्ट हुआ है। सविता के लक्षण सूर्य से इतने अधिक साम्य रखते हैं कि कुत्रचित् दोनों को एक ही देवता के रूप में समझा गया है। पौराणिक काल में तो सविता और सूर्य अभिन्न ही माने गये हैं। तथापि वैदिक काल में सूर्य मूर्त देवता के रूप में तथा सविता अमूर्त भावात्मक कार्यप्रेरक देवता के रूप में देखे गये हैं। निरुक्त (10.31) में इनका निर्वचन प्रसंग में है–**सविता सर्वस्य प्रसविता,** अर्थात् समस्त संसार और कर्मों को प्रेरणा द्वारा उत्पन्न करना सविता का मुख्य कार्य है। सविता से सम्बद्ध ऋचाओं में **सू** धातु से निष्पन्न शब्दों का सर्वत्र प्रयोग मिलता है, यथा – **प्रसावीद्** (उद्बोधित किया), **प्रसविता** (जाग्रत करने वाला), **प्रसवः, सवः** (उद्बोधन), **सुवतात्** (प्रस्तुत करे), **सोषवीति** (बार-बार प्रेरित करता है), **परा सुव** (दूर भगाओ), **आ सुव** (इधर प्रेरित करो) इत्यादि। इत्थं सविता का सम्बन्ध प्रेरणा एवं उद्बोधन के साथ अत्यन्त अधिक है। सूर्य के साथ सू धातु का एक-दो बार ही प्रयोग प्राप्त होता है।

विद्वानों का कथन है कि सविता मूलतः भारतीय देवता हैं। सूर्य के विशेषण के रूप में इनकी कल्पना हुई थी, जो जीवन और गति को प्रेरित करके संसार में व्यवस्था निर्मित करते हैं।

सविता के सन्दर्भों में हिरण्य के साथ उनका विशेष सम्बन्ध स्पष्टतया प्रकाशित होता है। उनकी आँखें **(हिरण्याक्षः)**, हाथ **(हिरण्यपाणिः, हिरण्यहस्तः)** तथा जीभ **(हिरण्यजिह्वः)** तक स्वर्णमय है। उनके केश पीत हैं **(हरिकेशः)**। सविता का रथ पूर्णतः स्वर्णमय है– **हिरण्ययेन सविता रथेन**। उस रथ के छोटे-मोटे अवयव भी स्वर्ण निर्मित हैं। उनके रथ को चमकीले, भूरे रंग वाले तथा श्वेत चरण युक्त अश्व खींचते हैं। **विजनाञ्छ्यावाः शितिपादो अख्यन्,** सविता का रथ अलंकारों से पूर्ण है तथा अपने स्वामी के समान ही वह विश्वरूप भी है **(अभीवृतं शनैर्विश्वरूपम्)**। अपनी भुजाओं को उठाकर सविता सभी प्राणियों को आशीर्वाद/प्रेरणा देते हैं। वे एक ही साथ सभी लोकों को तथा अन्धकारपूर्ण स्थानों को उद्भासित कर देते हैं। सविता का मार्ग अन्तरिक्ष में शाश्वतरूप से निर्मित है, उसमें धूलि नहीं है और वह अत्यन्त सुगम है। उपासकों की रक्षार्थ उन मार्गों से सविता के आगमन की प्रार्थना की गयी है–

> **ये ते पन्थाः सवितः पूर्व्यासोऽरेणवः सुकृता अन्तरिक्षे।**
> **तेभिर्नो अद्य पथिभिः सुगेभी रक्षा च नो अधि च ब्रूहि देव।।**
> **(ऋग्वेद 1.35.11)**

दुर्भाग्य, अपकार, कष्ट एवं अन्धकार को दूर भगाना सविता का महत्त्वपूर्ण कार्य है। साथ ही वे कल्याण एवं शान्ति का आदान करते हैं। एक ऋचा में इस प्रकार प्रार्थना की गयी है–

विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव।

यद् भद्रं तन्न आ सुव।। (ऋग्वेद 5.82.5)

प्रेरक एवं विश्रान्ति प्रदायक होने के कारण सविता दिवस के अतिरिक्त रात्रि के भी देवता हैं। प्रातःकाल में प्राणियों को वे कार्यार्थ प्रेरित करते हैं तो रात्रि को लाकर विश्राम भी प्रदान करते हैं। उनके लक्षणों में कतिपय नैतिक विशिष्टताएँ भी हैं, यथा—वे पापों का संशोधन करके प्राणियों की रक्षा परलोक में भी करते हैं। मृत्यु के अनन्तर वे अपने उपासकों को परम सुख के स्थान तक पहुंचाते हैं। देवताओं का अमृतत्व भी सविता की ही कृपा है।

पुराण काल में सविता विश्व की मानसिक, शारीरिक, नैतिक एवं उत्तेजकशक्ति के प्रतीक बन गये, जिससे अधोलिखित मन्त्र को धार्मिक क्रिया-कलाप में समस्त मन्त्रों की अपेक्षा उत्कृष्ट स्थान प्राप्त हुआ। प्रकृत मन्त्र को गायत्री छन्द के कारण गायत्री मन्त्र भी कहते हैं। यद्यपि इसके अन्तर्गत सविता देवता से बुद्धि प्राप्त्यर्थ प्रार्थना है—

तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि।

धियो यो नः प्रचोदयात्।।(ऋग्वेद 3.62.10)

भाव यह है कि उस सविता देवता के वरणीय श्रेष्ठ प्रकाश का हम ध्यान करें जो हमारी बुद्धि को प्रेरित करेगा। इसके आरम्भ में ओंकार अर्थात् प्रणव तथा तीन लोकों के प्रतिनिधिभूत महाव्याहृतियाँ भी प्रयुक्त की जाती हैं।

13.2.4 वाक्

ऋग्वेद के वाक् सूक्त (10.125) में वाक् की परिगणना देवी के रूप में प्राप्त होती है। सूक्त में वाक् स्वयमेव स्वयं का वर्णन करती हैं, यथा –

अहं रुद्रेभिर्वसुभिश्चराम्यहमादित्यैरुत विश्वदेवैः।
अहं मित्रावरुणोभा बिभर्म्यहमिन्द्राग्नी अहमश्विनोभा।।10.125.1।।
बृहस्पते प्रथमं वाचो अग्रं यत्प्रैरत नामधेयं दधानाः।
यदेषां श्रेष्ठं यदरिप्रमासीत्प्रेम्णा तदेषां निहितं गुहा विः।।10.71.1।।

वाक् सभी देवताओं के साथ रहती हैं एवं मित्र-वरुण, इन्द्राग्नि तथा अश्विनों को धारण करती हैं। ऐसे मनुष्य जो आस्था से वियुक्त हैं उनके प्रति वे रुद्र का धनुष उठाती हैं। वाक् का स्थान जल एवं सागर में है। यह समस्त प्राणियों को व्याप्त किये हुए है। मन्त्रों के सन्दर्भ से वाक् को रानी तथा दिव्या सम्बोधन का ज्ञान होता है। यथा –

यद्वाग्वदन्त्यविचेतनानि राष्ट्री देवानां निषसाद मन्द्रा।
चतस्र ऊर्ज दुदुहे पयांसि क्व स्विदस्याः परमं जगाम।।8.100.10।।
देवीं वाचमजनयन्त देवास्तां विश्वरूपाः पशवो वदन्ति।
सा नो मन्द्रेषमूर्जं दुहाना धेनुर्वागस्मानुपसुष्टुतैतु।।8.100.11।।

निघण्टुकोश में वाक् की गणना अन्तरिक्षस्थानीय देवताओं में प्राप्त होती है। साथ ही निरुक्तकार के अनुसार **(तस्मान्माध्यमिकां वाचं मन्यन्ते। निरुक्त 11.27)** माध्यमिका वाक्, वाग्देवी के मानवीकरण का आरम्भ का स्थान/बीज कही जा सकती है। वाक् के सन्दर्भ में ब्राह्मणग्रन्थों में एक प्रसिद्ध गाथा है जिसके अनुसार सोम को गन्धर्वों के यहाँ से स्त्रीरूपधारिणी वाक् के विनिमय से लाया गया था। यथा –**सोमो**

वै राजा गन्धर्वेष्वासीत्तं देवाश्च ऋषयश्चाभ्यध्यायन् सोमो राजागच्छेत् इति सा वागब्रवीत्। स्त्रीकामा वै गन्धर्वा मयैव स्त्रिया भूतया पणध्वमित (ऐतरेय ब्राह्मण 1.27)।

13.2.5 पुरुष

वैदिक साहित्य में प्राप्त पुरुष सूक्त **(ऋग्वेद 10.90)** का देवता पुरुष को बताया गया है। यह सृष्टि की मूल रचना का कर्त्ता है। इसके सभी अंग सृष्टि के अंग हो गये। पूर्ण पुरुष (नारायण) अनन्त शिर, अनन्त नेत्र तथा असंख्य पैर वाला है। वह पृथिवी प्रभृति सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को चारों ओर से व्याप्त कर दश अंगुल अधिक परिमाण में विद्यमान है, यथा –

सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात्।
स भूमिं विश्वतो वृत्वात्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम्।।1।। (ऋग्वेद 10.90)

वर्तमान, भूत तथा भविष्य वह परम पुरुष ही है। उसकी इतनी महिमा है और उससे भी बड़ा वह परमपुरुष है, उसके एक चतुर्थांश में सम्पूर्ण लोक हैं, तथा इसका तीन चतुर्थांश, अमरलोक है, जो द्युलोक नाम से जाना जाता है। उसके चतुर्थांश से ही इस सृष्टि का प्रपंच चलता है।

उस पुरुष के चतुर्थांश से विराट् उत्पन्न हुआ, विराट् से (जीवात्मा रूप में) पुरुष (उत्पन्न हुआ) उत्पन्न होते ही उसने (देव मनुष्य आदि से) अपने को अलग कर लिया। इसके पश्चात् पृथिवी तथा जीवशरीर की सृष्टि की। यथा –

तस्माद्विराडजायत विराजो अधि पूरुषः।
स जातो अत्यरिच्यत पश्चाद्भूमिमथो पुरः।।5।।(ऋग्वेद 10.90)

देवताओं ने जब पुरुषरूप मानस हविर्द्रव्य से यज्ञ किया, (उस समय) वसन्त ऋतु इस यज्ञ में घृतरूप थी, ग्रीष्म समिधा थी तथा शरद् ऋतु हविरूप थी। यही प्रकृति-यज्ञ समग्र सृष्टि की सर्जना करने वाला है।

उस सबसे पूर्व उत्पन्न यजनीय पुरुष को देवताओं ने पवित्र कुश पर रखकर प्रोक्षण किया। उससे देवताओं ने, प्रजापति आदि सृष्टि कर्त्ताओं ने तथा जो ऋषि थे, उन्होंने यजन किया। ये ऋषि आदि पार्थिव प्राणी नहीं हैं, अपितु सृष्टि के मूलभूत तत्त्व हैं। उस यज्ञ से जिसमें सर्वरूपात्मक पुरुष का यजन हुआ था, दधिमिश्रित घृत एकत्र किया गया। उस घृत से आकाश, वन तथा ग्रामों में रहने वाले जीवों की सृष्टि हुई। उस सर्वहुत् यज्ञ से ऋक्, साम, यजुष् उत्पन्न हुए तथा गायत्री आदि छन्द भी उत्पन्न हुए।

उस सर्वहुत् यज्ञ से अश्व उत्पन्न हुए तथा वे सभी जो दोनों तरफ दांत वाले हैं। उससे गायें उत्पन्न हुईं तथा उससे बकरियाँ तथा भेड़ें भी उत्पन्न हुईं। अजा उदान वायु है, जो सदा ऊपर की ओर चलता है, तथा भेड़ अपान वायु है जो सर्वदा निम्नगामी होता है।

जब देवताओं ने पुरुष को विभक्त किया, उस समय उसके कितने विभाग किये? उसका मुख क्या था? उसकी दोनों भुजायें क्या थीं? उसकी दोनो जंघायें क्या थीं? उसके दोनों पैर क्या कहे जाते हैं? ब्राह्मण उसका मुख था, दोनों भुजाओं से क्षत्रिय हुआ, उसकी जंघाओं से वैश्य हुआ तथा उसके दोनों पैरों से शूद्र उत्पन्न हुआ। उस

पुरुष के मन से चन्द्रमा, आँखों से सूर्य, मुख से इन्द्र और अग्नि तथा उसके श्वास से वायु की उत्पत्ति हुई। उसकी नाभि से अन्तरिक्ष, शिर से आकाश, दोनों पैरों से पृथिवी, कान से दिशायें उत्पन्न हुईं, यथा –

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद्बाहू राजन्यः कृतः।
ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत।।12।।
चन्द्रमा मनसो जातश्चक्षोः सूर्यो अजायत।
मुखादिन्द्रचाग्निश्च प्राणाद्वायुरजायत।।13।।(ऋग्वेद 10.90)

उसकी सात परिधियाँ थीं, इक्कीस समिधायें बनायी गई थीं, जिस समय यज्ञ करते हुए देवताओं ने पुरुष पशु को बाँधा था। उस यज्ञ की सात परिधियाँ कही गई हैं। परिधि यज्ञ-वेदी की सीमा का नाम है। सात लोक ही सप्त परिधियाँ है। इसी के अनुकरण पर ऐष्टिक वेदि के आहवनीय की तीन परिधियाँ, उत्तरवेदि की तीन परिधियाँ तथा आदित्य सप्तम परिधि रूप में है। संवत्सर के 12 मास, 5 ऋतुयें, ये 3 लोक तथा आदित्य ये ही यज्ञ की 21 समिधायें हैं। इन प्रतीकों का वर्णन ब्राह्मण ग्रन्थों में है। यज्ञ से देवताओं ने यज्ञ पुरुष का यजन किया, वे ही सर्वप्रथम धर्म थे। उन यजन करने वालों ने स्वर्ग को प्राप्त किया, जहाँ पर सृष्टि करने में समर्थ प्रजापति आदि देवगण वास करते हैं। सारतया पुरुष रूप आत्मा के बोध द्वारा जीवन को पूर्णता की ओर बढ़ाना चाहिए।

विशेष – वस्तुतः अन्य देवताओं के समान पुरुष का वर्णन स्पष्टतया प्राप्त नहीं होता है। तदभाव में पुरुषसूक्त के भावों का संग्रन्थन यहाँ उपस्थित किया गया है।

13.2.6 मरुत्

ऋग्वेद के अनुसार मरुतों को अन्तरिक्ष स्थानीय देवताओं में परिगणित किया गया है। मरुतों के समूह में कुल संख्या साठ अथवा सात के त्रिगुणित स्वीकार की जाती हैं। अतएव इनकी प्रार्थना बहुवचन में प्राप्त होती है। ऋग्वेद में स्वतन्त्रतया 33 सूक्तों में, इन्द्र के साथ 7 सूक्तों में एवं पूषा और अग्नि के साथ 1-1 सूक्त में स्तुति प्राप्त होती है। मरुत् को तूफान एवं वृष्टि का देवता स्वीकार किया गया है।

निरुक्त (11.13) में मरुत् के निर्वचन प्रसंग में कहा गया है– **मरुतो मितराविणो मितरोचितो वा, महद् द्रवन्तीति वा** अर्थात् मरुत कसकर गर्जना करते हैं/चमकते हैं। तृतीय निर्वचन के अनुसार यह अत्यधिक तीव्र गति से दौड़ते हैं।

रुद्र मरुतों के पिता हैं। अतएव इन्हें रुद्रासः/रुद्रियासः/रुद्रसूनवः कहा जाता है। रुद्र के विशिष्ट लक्षण मरुतों में भी प्राप्त होते हैं। मरुतों की माता पृश्नि है, जो गौ के रूप में कल्पित है। अतः इन्हें गोमातरः एवं पृश्निमातरः भी कहा गया है। कतिपय स्थलों पर द्यौ, अग्नि तथा वायु की सन्तति भी इन्हें बताया गया है। साथ ही कहीं पर स्वयं उत्पन्न भी कहा गया है। इनके गण में कोई बड़ा/छोटा नहीं है–**अज्येष्ठासो अकनिष्ठास एते सं भ्रातरो वावृधुः सौभगाय (ऋग्वेद 5.60.5)।**

यह सभी स्वमार्ग पर साथ-साथ बढ़ते हैं। रोदसी इनकी पत्नी है, जो सदा इनके रथ पर रहती है। इनका सम्बन्ध द्युति एवं कान्ति से है। ये सभी अग्नि की ज्वाला के समान चमकते हैं। इन्हें स्वभानवः/रोचमानाः/चन्द्रवर्णाः प्रभृति विविध विशेष नामों से पुकारा जाता है। इनका विद्युत् के साथ सम्बन्ध कतिपय स्थलों में दृष्टिगोचर होता है। जब यह घृत की वर्षा करते हैं तब विद्युत् पृथ्वी की ओर देखकर स्मितहास करती है।

इनके आयुध भी इन्हीं के समान द्युतिमान् है। इनके कृपाण/भाले **(ऋष्टि)** विद्युतवत् चमकते हैं। ये धनुष भी धारण करते हैं। इनके रथ चमकीले हैं, जिसको मन की गति से चलनशील हरिणियां खींचती हैं। इनके रथ के घोड़े चितकबरे हैं, अतः इन्हें **पृषदश्वाः** कहा जाता है। इनकी वेशभूषा में सुन्दर अलंकार, सुनहरे वस्त्र, माला और शिरस्त्राणादि प्रमुख हैं। ये स्त्रियों के समान अलंकृत होते हैं। ये संघर्षशील देवता हैं। युद्धकाल ये इन्द्र की शक्ति का वर्धन कर देते हैं तथा समस्त शत्रुओं को रोक देते हैं। वृष्टि के समय पर अपने रथों में हरिणियों को युक्त कर वे मेघ को इस प्रकार प्रेरित करते हैं, जिससे चारों तरफ से धारायें ऊपर से फूट पड़ती हैं। पृथ्वी जल से सिक्त हो जाती है। मरुतों के भयावह कार्य से सभी भुवन डरते हैं, क्योंकि वे राजाओं के समान प्रदीप्त आकृति वाले हैं – **भयन्ते विश्वा भुवना मरुद्भ्यो राजान इव त्वेषसन्दृशो नरः (ऋग्वेद 1.85.8)।** ये अत्यधिक पराक्रमशील हैं तथा स्वपराक्रम से वनों/पर्वतों/पृथिवी को भी आन्दोलित कर देते हैं **(प्रच्यावयन्तो अच्युता चिदोजसा)**। पर्वतों अर्थात् मेघों को समुद्र के पार पहुँचा देते हैं– **य ईङ्खन्ति पर्वतान् तिरः समुद्रमर्णवम् (ऋग्वेद 1.19.7)।**

मेघों की सहायता से ये सूर्य का आच्छादन कर देते हैं। वृक्षों को जंगली हाथियों की तरह चबा डालते हैं– **मृगा इव हस्तिनः खादथा वना (ऋग्वेद 1.64.7)।** इनकी गति मन के समान है तथा गर्जना भयावह है। इन्द्र के युद्ध में ये सहायक होते हैं। वृत्रासुर के साथ घटित युद्ध में इन्होंने गीत का गान तथा सोम का सवन भी किया था। ये अपने गान के द्वारा इन्द्र की शक्ति को बढ़ा देते हैं। कभी-कभी यह स्वपितृतुल्य अत्यन्त क्रूर भी हो जाते हैं। अतएव इनसे प्रार्थना की जाती है कि ये अपने आयुधों को उपासकों से दूर रखें। समुद्र, पर्वत एवं नदियों के तटों से ये ओषधियाँ ले आते हैं अतएव रुद्रवत् ओषधि सम्बद्ध हैं **(आ भेषजस्य वहता सुदानवः)।** यह भयावह होने पर भी कान्ति एवं सौन्दर्य के देवता भी हैं।

13.2.7 नासदीय

सृष्टि उत्पत्ति से पूर्व न नामरूपादि रहित अवस्था थी, न नामरूपात्मक अवस्था ही थी, न कोई लोक था, न आकाश ही था जो ऊपर है। किसने आवृत किया था? कहां किसकी सुरक्षा में? क्या अपार गम्भीर जल था? तब मृत्यु नहीं थी अमृतत्व का अस्तित्व नहीं था। रात्रि तथा दिन का भेदात्म ज्ञान भी नहीं था। उससे बढ़कर अलग पहले कुछ भी नहीं था।

महान् अन्धकार से ढंका हुआ सर्वप्रथम अन्धकार था। इस सम्पूर्ण जल से भिन्न कोई चिह्न नहीं था वह स्थित था, सर्वव्यापी भावरूप अज्ञान था अपनी तपस्या की महिमा से वह एक उत्पन्न हुआ।

काम, जो मन का प्रथम विकार था उसमें सर्वप्रथम उत्पन्न हुआ। बुद्धिमानों ने हृदय में प्रज्ञा से विचार कर नामरूपात्मक जगत् का कारण नामरूपरहित तत्त्व में ही पाया। उनका कार्य जाल (जो) किरणों की तरह शीघ्र फैला हुआ था, क्या वह मध्य में था अथवा क्या वह नीचे था? अथवा क्या वह ऊपर था? सृष्टि का बीज धारण करने वाले थे, आकाशादि महाभूत नीचे भोग्य था ऊपर भोक्ता।

कौन सही रूप से जानता है? कौन यह कहेगा कि यह कहाँ से उत्पन्न हुई है? यह विविध प्रकार की सृष्टि कहाँ से? देवता इस सृष्टि की तुलना में नवीन हैं। तब यह कौन जानता है? जहाँ से इसका प्रादुर्भाव हुआ।

यह विविधरूपा सृष्टि जहाँ से आई है (उसको उसने) या तो धारण किया था अथवा अगर नहीं (तो किसने धारण किया था) जो इसका ईश्वर है, वह सर्वोच्च स्वर्ग में है वही निश्चित रूप से इसे जानता है, यदि वह नहीं जानता, तो कौन जानता है (ऋग्वेद 10.129) सृष्टि की रचना परमेष्ठी ही करता है, यह प्रसिद्ध है।

विशेष – नासदीय नाम से ऋग्वेद में सूक्त प्राप्त होता है देवता नहीं। वस्तुतः नासदीय सूक्त के देवता भाववृत अथवा प्रजापति (क) ही हैं। अतएव सूक्तानुसार यह दैवभावसम्बद्ध विवरण प्रस्तुत किया गया है।

13.2.8 हिरण्यगर्भ

ऋग्वेद (4.53.2) में प्रजापति पद का उल्लेख सविता के विशेषण के रूप में हुआ है, जहाँ सविता को स्वर्ग का धारक और विश्व का प्रजापति कहा गया है। दशम मण्डल में चार स्थानों पर इस शब्द का एक स्वतंत्र देवता के अभिधान की भाँति प्रयोग है। प्रजापति को प्रशस्त प्रजा देने के लिए प्रयोग किया गया है एवं विष्णु, त्वष्टा और धाता के साथ उन्हें अपत्यदान के लिए (ऋग्वेद 10.85.43, 10.184.1, 9.5.9)। प्रजापति गायों को उर्वरा बनाते हैं (ऋग्वेद 10.169.4), सन्तानों और प्राणियों के रक्षक होने के कारण प्रजापति का आह्वान अथर्ववेद में भी किया गया है। ऋग्वैदिक सूक्त (10.121.1) में उनका स्तवन पृथिवी, स्वर्ग, जल और निःशेष प्राणियों के सर्जक के रूप में किया गया है। वे अशेष सन्तानों के एकमात्र अधिपति, प्राणियों और गतिमानों के एकमात्र राजा और सब देवों के ऊपर एक देव के रूप में वर्णित हैं। उनके विधानों का पालन सभी प्राणी और देवता करते हैं। उन्होंने स्वर्ग और पृथ्वी को स्तम्भित किया। वह अन्तरिक्ष में लोगों के परिभ्रमण हैं। अपनी भुजाओं से वे संसार और प्राणियों को व्याप्त करते हैं। सर्वोच्च देव के रूप में ऋग्वेद में उनका केवल एकबार उल्लेख है किन्तु अथर्ववेद एवं वाजसनेयी संहिता में तथा ब्राह्मणों में सर्वत्र उन्हें प्रमुख देवता के रूप में निर्देश है। वह देवाधिदेव हैं (शतपथ ब्राह्मण 11.1.6.14)। वे आदिकाल में अकेले विद्यमान थे (शतपथ ब्राह्मण 2.2.4.1)। वे प्रथम याज्ञिक हैं शतपथ ब्राह्मण (6.2.3.1) में प्रजापति का तादूप्य ब्रह्मा के साथ किया गया है (आपस्तम्ब गृह्यसूत्र 3.4)। परवर्ती वैदिक धर्म के इस प्रमुख देवता के स्थान पर उपनिषदों एवं दर्शनों ने निर्गुण ब्रह्म की स्थापना की है।

मैत्रायणी संहिता (4.2.12) में कथानक आता है कि एकबार प्रजापति अपनी पुत्री उषा पर आसक्त हो गये। तब उषा ने स्वयं को मृगी के रूप में परिवर्तित कर लिया। इस पर प्रजापति ने अपने को मृग बना लिया। तब रुद्र ने क्रुद्ध होकर उनके ऊपर शर सन्धान किया, तब प्रजापति को होश आया और उन्होंने प्रतिज्ञा की, कि यदि रुद्र उनके ऊपर बाण नहीं छोड़ेंगे तो वे उन्हें पशुपति बना देंगे (ऋग्वेद 10.61.7)। इस गाथा का उल्लेख ब्राह्मण-ग्रन्थों में अनेकत्र हुआ है (ऐतरेय ब्राह्मण 3.33, शतपथ ब्राह्मण 1.7.4.1, पंचविंश ब्राह्मण 8.2.10)। इसका आधार ऋग्वेद के दो मन्त्र प्रतीत होते हैं (ऋग्वेद 1.71.5,10.61.5), जिनमें पिता सम्भवतः द्यौः अपनी पुत्री (पृथ्वी) पर आसक्त होते दिखाये गये हैं और जिनमें एकबार शर संधायक की ओर भी संकेत है।

ऋग्वेद (10.121) के प्रथम 9 मन्त्रों के क्रम में प्रजापति शब्द की आवृत्ति सर्वनाम **(क)** कस्मै के रूप में है। दशम मन्त्र में उत्तर दिया गया है कि एकाकी प्रजापति संस्थाओं में व्याप्त है। इस प्रयोग के आधार पर **क** शब्द का बाद में प्रजापति के विशेषण के

रूप में सर्वोच्च देव के स्वतन्त्र नाम के रूप में प्रयोग प्रारम्भ हुआ (ऐतरेय ब्राह्मण 3.22.7, मैत्रायणी संहिता 3.12.5)।

ऋग्वेद (10.121) के प्रथम मन्त्र में सर्वोच्च देव को हिरण्यगर्भ कहा गया है, जो अशेष सत्ता के एकाकी अधिपति हैं। यह नाम ऋग्वेद में केवल इसी स्थान पर आता है किन्तु अथर्ववेद और ब्राह्मण साहित्य में अनेकत्र हुआ है। अथर्ववेद (4.2.8) में हिरण्यगर्भ का बोध इस प्रकार भी कराया गया है– जलों ने एक गर्भ उत्पन्न किया, जो उत्पन्न होते ही स्वर्णाभवरण से आच्छादित हो गया। तैत्तिरीय संहिता में हिरण्यगर्भ का प्रतिमान प्रजापति के साथ किया गया है। परवर्ती साहित्य में यह शब्द ब्रह्मा का अभिधान हो गया।

विशेष – हिरण्यगर्भ नाम से देवता का तात्पर्य प्रजापति से ही समझना चाहिए।

13.2.9 विष्णु

ब्राह्मण-ग्रन्थों तथा पौराणिक सन्दर्भों में विख्यात एवं महत्त्वशाली विष्णु का स्थान ऋग्वेद में उस प्रकार का नहीं है। संख्या की दृष्टि से केवल पाँच सूक्तों में ही विष्णु की एकाकी स्तुति है। कतिपय सूक्तों में आंशिक रूप से विष्णु का वर्णन है। विष्णु शब्द की व्युत्पत्ति विष्लृ धातु (व्याप्ति अर्थ) से है। एतदनुसार यह तीनों लोकों को व्याप्त करने वाले देवता हैं। विष्णु के वैशिष्ट्य में तीन पग द्वारा सम्पूर्ण विश्व का क्रमण, बृहत् शरीर धारण एवं युवा पुरुष का रूप लेना है। तीन पगों द्वारा विष्णु तीन लोकों की परिक्रमा करते हैं। इनकी गति तथा पदक्रम अत्यधिक विशाल हैं इसलिए उन्हें उरुगाय/उरुक्रम कहा गया है। विष्णु के दो पदक्रम मनुष्यों को दृष्टिगोचर होते हैं, किन्तु तृतीय पद मानव-दृष्टि से ऊपर है। उसका मेधावी जन ही प्रत्यक्ष कर पाते हैं। वह स्थान द्युलोक में अवस्थित नेत्र के समान प्रकाशित है– **तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः। दिवीव चक्षुराततम्।। (ऋग्वेद 1.22.20)**

वह स्थान विष्णु का प्रिय आवास है, जहाँ उनके उपासक रमण करते हैं। मधु का उद्गम वहीं है – **विष्णोः पदे परमे मध्व उत्सः**। उसी स्थान पर देवगण भी आनन्द प्राप्त करते हैं। विष्णु के परमप्रिय आवास स्थल में सदा विचरण करने वाली **(अयासः)** तथा बड़े शृंग वाली गायें **(गावो भूरिशृङ्गः)** रहती हैं। सम्भवतः यहाँ मेघों का संकेत है किन्तु इसी आधार पर विष्णु के गोलोक धाम का वर्णन पौराणिक ग्रन्थों में बारम्बार हुआ है। विष्णु के तीन पद में ही समस्त लोक निवास करते हैं–

यस्योरुषु त्रिषु विक्रमणेष्वधिक्षियन्ति भुवनानि विश्वा। (ऋ1.154.2)

उनके उत्तम पद में मधु का उत्स होने के कारण ये सभी पद मधु से अन्वित हैं **–यस्यत्री पूर्णा मधुना पदानि**। विष्णु के तीन पद सूर्य के पथ के वाचक हैं।

यास्क ने विष्णु के तीन पदक्रमों की व्याख्या के लिए शाकपूणि का मत ग्रहण किया है कि पृथ्वी, अन्तरिक्ष और द्युलोक में क्रमशः इनके पद हैं– **यदिदं किं च तद्विक्रमते विष्णु त्रिधा निधत्ते पदं त्रेधाभावाय, पृथिव्यामन्तरिक्षे दिवीति शाकपूणिः (निरुक्त 12.19)।**

कतिपय विद्वानों की धारणा है कि विष्णु का यद्यपि किसी प्राकृतिक दृश्य से सम्बन्ध नहीं था तथापि मूलतः सूर्य की कल्पना ही विष्णु के रूप में विकसित हुई। सूर्य सत्वर चलने वाले ज्योतिष्पुंज हैं तो विष्णु भी अपने विस्तृत क्रमण से सम्पूर्ण जगत् का

परिक्रमण करते हैं। विष्णु ने तीन पद क्यों उठाये इसका वर्णन गौणरूप से कुछ ऋचाओं में प्राप्त होता है। पीड़ित मनु के विष्णु ने पार्थिव लोकों का तीन बार परिक्रमण किया, यथा –

यो रजांसि विममे पार्थिवानि त्रिश्चिद् विष्णुर्मनवे बाधिताय। (ऋग्वेद 6.49.13)

एक मन्त्र में सन्दर्भ प्राप्त होता है कि मनुष्यों का आवास स्थापनार्थ विष्णु ने पृथ्वी का परिक्रमण किया, इन्द्र के साथ **उरुक्रमण** करते हुए उन्होंने हमारे जीवन के लिए लोकों का विस्तार किया। विष्णु के इस स्वरूप में ही उनके वामनावतार के बीज निहित हैं। शतपथ ब्राह्मण इत्यादि ग्रन्थों में वामनरूप विष्णु की चर्चा है।

इन्द्र के साथ विष्णु की मित्रता का उल्लेख ऋग्वेद में अनेकत्र है। वृत्रवध के पूर्व इन्द्र विष्णु से कहते हैं कि हे मित्र! तुम लम्बे पैर रखो, यथा –

अथाब्रवीद् वृत्रमिन्द्रे हनिष्यन्तसखे विष्णो वितरं विक्रमस्व।(ऋग्वेद 4.18.11)

दोनों देवताओं ने साथ-साथ वृत्र का वध किया, दास पर विजय प्राप्त की, शम्बर के 99 दुर्गों को तोड़ा और वर्चिन् के साथियों को धराशायी किया। विष्णु, इन्द्र के सहज मित्र हैं **(इन्द्रस्य युज्यः सखा)**। इस मित्रता के कारण पौराणिक युग में विष्णु को इन्द्र का अनुज **(उपेन्द्र)** कहा गया है। विष्णु का वाहन गरुड़ है, जो पक्षियों में प्रधान है और अग्नि के समान ज्योतिष्मान् है। उसे गरुत्मत् और सुपर्ण भी कहा गया है।

उपर्युक्त दोनों पदों का प्रयोग ऋग्वेद में खगरूप सूर्य के निमित्त किया गया है। यह विष्णु को सूर्य का रूप मानने के लिए महत्त्वपूर्ण संकेत है। कालान्तर में सूर्यनारायण की पूजा प्रचलित हुई। नारायण विष्णु के ही रूपान्तर हैं। समस्त जगत् में अपने पदक्रमों के कारण व्याप्त होने वाले विष्णु वैदिक युग में भी महत्त्वपूर्ण देवता थे।

13.3 सारांश

इस इकाई में आपने अध्ययन किया कि **अग्नि** के पृथिवी, अन्तरिक्ष एवं द्युलोक भेद से त्रैविध्य हैं। अग्नि, विद्युत् तथा सौराग्नि। यह अग्रणी है। **इन्द्र** देवताओं का राजा, वृष्टिकारक तथा असुरों तथा राक्षसों का विनाशक है। यह वज्र धारण करता है तथा यह बहुत्र स्थलों पर स्तुत है। **सविता** द्युस्थानीय देवता है। यह सूर्य से अधिक साम्ययुक्त है। यह सभी का प्रेरक है। प्रसिद्ध गायत्री मन्त्र के द्वारा सविता की ही स्तुति की जाती है। **वाक्** अन्तरिक्षस्थानीय देवी के रूप में परिगणित है। यह सभी देवताओं के साथ रहती है। **पुरुष** अनन्त शिर, नेत्र तथा पादों वाला है। यह विराट् पुरुष समस्त लोकों का सर्जक है। **मरुत्** से सम्बद्ध 33 सूक्त प्राप्त होते हैं। यह वायु एवं वृष्टि को उत्पन्न करने वाला है। यह अन्तरिक्ष का देवता है। **नासदीय** से तात्पर्य भाववृत्त देवता से है। यह प्रजापति के रूप में सृष्टि रचना के आधार हैं। **हिरण्यगर्भ** वस्तुतः क प्रजापति का बोधक है। यह सृष्टि की उत्पत्ति को प्रकट करता है। **विष्णु** तीनों लोकों को व्याप्त करने वाला है। यह त्रिपाद से सम्पूर्ण त्रिलोक को आवृत कर लेता है।

13.4 शब्दावली

अपर – दूसरा/अन्य

वियुक्त – पृथक्/अलग

विनिमय – बदले में

तत्तद् – उस-उस

प्रवहण – प्रवाह करना

प्रसरण – प्रसार करना

सर्जक – सृष्टि/उत्पन्न करने वाले

सत्वर – शीघ्रता के साथ

13.5 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. वैदिक साहित्य और संस्कृत, पं. बलदेव उपाध्याय, शारदा प्रकाशन, वाराणसी।
2. वैदिक देवशास्त्र, डा. सूर्यकान्त, मेहरचन्द लछमनदास, नई दिल्ली।
3. ऋग्वेद संहिता, सायण भाष्य, राष्ट्रियसंस्कृतसंस्थानम्, नई दिल्ली।

13.6 अभ्यास प्रश्न

1. वैदिक साहित्य के सन्दर्भ में अग्नि के माहात्म्य को प्रतिष्ठित कीजिए।
2. अग्नि एवं इन्द्र के कर्मों की तुलना कीजिए।
3. इन्द्र के स्वरूप पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।
4. सवितृ/सविता के मुख्य कर्मों पर प्रकाश डालिए।
5. सवितृ को वैदिक साहित्य में किस प्रकार की भूमिका में प्रतिष्ठित किया गया है? ससन्दर्भ वर्णन कीजिए।
6. वैदिक साहित्य के सन्दर्भ में वाक् के स्वरूप का वर्णन कीजिए।
7. विष्णु के पराक्रम का वर्णन कीजिए।
8. प्रजापति के प्रमुख कार्यों का ससन्दर्भ उल्लेख कीजिए।